# सुजान

(ऐतिहासिक उपन्यास)

# सुजान

( ऐतिहासिक उपन्यास )

मिथिलेश कुमारी मिश्र

•

वाणी वाटिका प्रकाशन
सैयदपुर, पटना—४

# सुजान

इतिहास की एक विस्मृति !
एक ऐसी विभूति जो यदि न होती
तो 'घन आनन्द' न होते
और यदि वे न होते
तो प्रेम का अर्थ न खुलता
और यदि अर्थ न खुलता
तो
रीतिकाल का शृङ्गार अपूर्ण
रह जाता
अस्तु, उस चिरउपेक्षिता नर्तकी
को ही
यह
कृति
अर्पित····

सुजान

•

'घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो, इत एक ते दूसरो आँक नहीं' आनन्द के सुरीले कण्ठ से निकली हुई यह पंक्ति सुजान के अन्तःकरण में रस भर देती थी। उस पर प्रीति का उन्माद छा जाता, यद्यपि वह भली-भाँति समझती थी कि प्रीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, वह वाराङ्गना है! राजनर्तकी है तो क्या हुआ? आखिर वेश्या ही है न! अन्य पेशेवर रण्डियों के मुहल्ले में नहीं रहती, तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि उसके भवन से निकलते पुरुषों को देखकर सभी अनुमान लगा लेते थे कि सुजान वेश्या है। कभी-कभी उसका मन भारी हो जाता, वही निराशा हो उठती, मारे वितृष्णा के वह पुरुषों से विद्रोह की इच्छा कर बैठती। वह वातायन के सहारे खड़ी हो जाती और व्योम में रतनारे नयन फैलाकर प्रश्न करती—बोलो! अम्बर! तुम्हीं बताओ! मुझे वेश्या किसने बनाया? उत्तर मिलता—पुरुषों ने। सुजान को पुरुष जाति से घृणा होने लगी थी परन्तु इनसे वह पिण्ड भी तो नहीं छुड़ा पाती थी। जैसे पुरुष ही संसार पर राज्य करते हों जैसे उन्हें ही सर्वोपरि बनने का एकाधिकार मिला हो, यह घोर वैषम्य है, विडम्बना है। नारी के लिए पुरुष अभिशाप है, पुरुष पाप है। एक क्षण दुःखी सुजान चीख उठती दूसरे ही क्षण लोल कपोलों पर अश्रुकण झलकने लगे। 'पुरुष नारी का पूरक है' पीछे से स्वर माधुरी मुखर हुई। मुड़कर सुजान ने देखा घन आनन्द!

घन आनन्द सुजान के लिए अपरिचित नहीं तो भी पूर्ण परिचित भी नहीं कहा जा सकता। जिस मुगल-साम्राज्य के वे मीरमुंशी हैं सुजान उसी की राजनर्तकी है। शाहंशाह 'रंगीले शाह' दोनों पर समान रूप से श्रद्धालु हैं। यदि वे सुजान के नृत्य पर नाच उठते थे तो घन आ—

की स्वर माधुरी पर भी निछावर थे। उनके लिए ये दोनों आँखों की पुतलियों की भाँति लगते थे जिनमें सुरा की लहर के डोर निरन्तर खिचे रहते थे। मुगल-साम्राज्य का सूर्य अस्ताचल गामी था। रंगीले शाह संगीत नृत्य के हाथों बिक चुके थे। घन आनन्द की पीढ़ियाँ मुगल-साम्राज्य की सेवा में खप चुकी थीं। वे दिन और थे। आज उसे न राजसेवा अच्छी लग रही थी और न रंगीले शाह की शाबाशी ! आगरा के उस ऐतिहासिक राजप्रासाद की कलात्मकता अथवा लटकते हुए सत-रंगी झाड़-फानूस भी उसका मन अपनी ओर नहीं खींच पाते थे। उसका अधीर चित्त केवल सुजान को देखते रहने के लिए व्याकुल रहता था। कई बार सोचता कि सुजान को लेकर कहीं दूर निकल जाए, परन्तु उसने अपनी इच्छा कभी व्यक्त नहीं की। कल सुजान ने गणेश ताल पर बड़ा मोहक नृत्य प्रस्तुत किया था। ग्वालियर नरेश ने अपनी मोतियों की माला सुजान के कण्ठ में पहना दी। रंगीले शाह ने सुजान को एक हीरा भेंट करने की घोषणा की और उसे अपने अंतःपुर में बुलाया। घन आनन्द शाह के निकट ही बैठा सब कुछ देख रहा था। वह प्रशासन नीति में कुशल था यह और बात थी, किन्तु कवि होने के नाते वह जो कुछ था उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। वह आसन पर भी स्थिर न रह सका। यद्यपि शाह के हरम में सुजान का जाना कोई नई बात नहीं थी तथापि सुजान में शील के देवी का रूप देखने वाले आनन्द को आज सहर्ष उसके चरणों को बढ़ते देख क्रमशः क्रोध, घृणा एवं जुगुप्सा की अनुभूति हो रही थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या कर डाले ?

उस समय आनन्द की मुखमुद्रा देखते ही बनती थी जैसे जुआड़ी सर्वस्व हारकर भी किसी और आशा से बैठा रहता है। जब घण्टों बाद सुजान हरम से न निकली तो आनन्द का धैर्य टूट गया। सेवकों को झाड़-फटकार बताकर वह सीधा अपनी बग्घी में बैठा। अपने घर पहुँचते ही शयन कक्ष में जा विराजा लेटे-लेटे सवैया की पंक्ति उभरी—

'कछु नेह निबाहनो जानत ना,
तौ सनेह की धार में काहे धँसे।'

सुजान को वह प्यार करता था। वह जानता था कि सुजान वार-नारी है, समाज के मनोरञ्जन की सामग्री है। मुगल शाहंशाह रंगीले शाह की चहेती है। सम्राट का उस पर एकाधिकार है, उसके इशारे पर वह थिरकती है, मनोविनोद करती है ऐसी सुजान आनन्द के लिए क्या हो सकती है? परन्तु उसके मन में सुजान के लिए आदर का स्थान है। सुजान उसके लिए सर्वस्व है। ईश्वर जानता है कि आज तक किसी भी रमणी की उसके मानस में कल्पना नहीं थी। बस, जबसे उसने सुजान को देखा, वह जैसे उसके हाथों बिक गया।

वह अधिक देर तक अपने भवन में भी न बैठा रह सका। बग्घी पर बैठकर सुजान के भवन में पहुँच गया। उसने देखा—सुजान ने अभी तक अपने वस्त्र भी नहीं बदले। उसका गौर वर्ण, अरविन्द सरीखे नैन, कनक यष्टि सी काया पर रेशमी वस्त्र, कण्ठ में हीरकहार, नागिन-सी वेणी—सब कुछ आनन्द के नयनों में समा गया। वह कुछ क्षण स्तब्ध-सा उसे निहारता रहा। 'आनन्द! तुम स्वस्थ नहीं दिख रहे हो। बैठो।' कहते हुए सुजान ने उसके निकट आकर दाहिना हाथ कन्धे पर रख दिया। आनन्द रोमाञ्चित हो उठा।

'सुजान' कहकर चुपचाप निहारने लगा।

'बोलो न?' सुजान मुस्कान बिखेरती हुई बोली—'आनन्द! मैं समझ गई हूँ कि तुम क्या कहना चाहते हो। तुम्हारे अन्तर का मन्थन मुझसे नहीं छिप सकता। तुम अवस्था, अनुभव, पद-गौरव, ज्ञान तथा मान में मुझसे बहुत ऊँचे हो, यों समझो कि तुम अम्बर हो तो मैं एक धूलिकण हूँ। फिर भी ध्यान रखना—मैं नारी हूँ, जवान हूँ, नाचने वाली वेश्या हूँ, इसलिए मुझसे कुछ अज्ञात नहीं। आओ बैठो।' कहकर सुजान ने नेह भरी दृष्टि से आनन्द की ओर निहारा। आनन्द पर जैसे [illegible]

'सुजान ! कौन कहता है कि तुम वेश्या हो । नृत्य एक ललित कला है, तुम नाचती हो तो इसका यह अर्थ नहीं कि तुम·····'

'हां आनन्द ! मैं वेश्या हूं ।' सुजान ने बात काटकर कहा । 'देखो, मेरी ओर देखो, मैं क्या दिखती हूं ?'

'तुम एक ऐसी पवित्र देवी हो जिसकी चरणधूलि मस्तक पर लगाई जा सकती है । तुम एक सती-साध्वी ललना हो जिसकी तुलना सीता-सावित्री से·····'

'ऐसा न कहो आनन्द !' सुजान का कण्ठ भर आया । 'तुम भावुक हो, कवि हो, सौन्दर्य के उपासक हो इसीलिए ऐसा सोच रहे हो । जो सच है उसे स्वीकारो, सती सीता-सावित्री से मुझ जैसी तुच्छ·····'

'सुजान ! स्वयं को गर्हित न करो । तुम्हारी ऊँचाई का पता मुझे है । जिसके पास ऐसी अलौकिक रूप-राशि हो, ऐसी दिव्य कला हो वह·····'

'आनन्द ! तुम जिसे रूप-राशि समझते हो, उसे लूटने के लिए मनुष्य भेड़िये की भांति टूट पड़ते हैं, तुम जिस कला पर आसक्त हो, मेरे जीवन की वही बला है । आनन्द ! मैं इन्हीं दोनों से छली गई हूं । हां ! तुम्हें मैं सावधान करना चाहती हूं कि तुम इस मृग-मरीचिका में मत पड़ना । तुम कला-मर्मज्ञ हो, भाव जगत् के चतुर चितेरे हो, मेरे प्रति तुम्हारा व्यामोह असंगत है । यों समझो मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है जो तुम्हारे जैसे पावन, निश्छल और आत्मबली की भेंट हो सके । मैं जहां हूं जिस कीचड़ में पड़ी हूं वहीं रहने दो ।' कहते-कहते सुजान हांफने सी लगी । घन आनन्द को उसकी यह तर्कना बड़ी अटपटी लगी । उसे लगा सुजान किसी दर्द से कराह रही है, उसका मनोबल जैसे स्खलित-सा हो गया है । उसने झुककर सुजान के चरणों में मस्तक रख दिया । सुजान चौंककर एक कदम पीछे हट गयी ।

'छिः-छिः आनन्द ! तुमने मुझे जीवित ही नरक में डाल दिया । लगता है, औरों की भांति तुम भी वासना के घेरे में घिर गये । तुम्हारे

जैसा उदात्त व्यक्तित्व आज एक वारनारी के चरणों में झुका ? मैं मर क्यों न गयी ?' 'तुम और चाहे जो भी कहो, सुजान ! अपने और मेरे मध्य वासना का नाम कभी न लेना । लगता है तुमने ही मुझे नरक में ढकेल दिया ।' इतना कहते-कहते उसे लगा कि अधिक देर वह रुका तो विक्षिप्त हो जाएगा । वह पीछे की ओर मुड़ा—

'जाओ सुजान ! मैं यही समझकर वापस जा रहा हूँ कि कभी-कभी देवता भी चौखट पर सर रगड़ते भक्त को ठुकरा देते हैं ।' आनन्द का कण्ठ रुँध गया और वह आगे बोल न सका । सुजान की सूझ पैनी थी । उसने तत्काल भाँप लिया है, कवि है साधारण मानव नही । भयभीत-सी सुजान उसके आगे लपक कर खड़ी हो गई ।

'आनन्द ! मुझमें इतनी शक्ति अथवा सामर्थ्य नही कि तुम्हारे इन विशेषणों को धारण कर सकूँ और सुनो तुमने राग छेड़ा है तो सुनो, यह भी ध्यान रहे कि इस भवन से तो जाने के लिए ही लोग आते हैं परन्तु तुम 'लोग' नही हो । मेरे आनन्द हो, तुम जा कैसे सकते हो ? रुको, मैं तुम्हारे लिए मधु रस लाती हूँ ।' सुजान विद्युत् गति से पार्श्व के कक्ष में घुसी । आनन्द का मुँह कुछ बोलने के लिए खुला किन्तु किससे बोले ?

थोड़ी देर तक आनन्द अपने मे खोया रहा । सुजान क्या है ? वह समझ नहीं पा रहा था । रूपयौवन-सम्पन्ना नर्तकी अथवा ज्ञान-गरिमा से परिपूर्ण विदुषी ! उसकी दृष्टि में सुजान सर्वश्रेष्ठ थी । शाही दरबार में उसके ललित नृत्य पर निछावर होते तो उसने अच्छे-अच्छे कुलीन राजाओं, सामन्तों और दरबारियों को देखा था । रंगीले शाह की तो वह इच्छा ही थी । एकाध दो बार जब अर्थ-व्यवस्था पर विचार-विमर्श करने वह शाहंशाह के हरम में बुलाया गया तो वहाँ यही सुजान अपने कोमल करों से शाह को मदिरा पिला रही थी । आश्चर्यमयी ललने ! तेरे रूप-वैविध्य से तो विधाता को भी दंग होना पड़ेगा । कैसी विकट संगति है ! ऐसी विशुद्ध कान्ति को ऐसा जघन्य जीवन देकर ब्रह्मा भी पश्चात्ताप कर रहा होगा । आनन्द ने मन ही मन इस देवी का वन्दन किया । उसकी आँखें

'सुजान ! कौन कहता है कि तुम वेश्या हो। नृत्य एक ललित कला है, तुम नाचती हो तो इसका यह अर्थ नहीं कि तुम.....'

'हाँ आनन्द ! मैं वेश्या हूँ।' सुजान ने बात काटकर कहा। 'देखो, मेरी ओर देखो, मैं क्या दिखती हूँ ?'

'तुम एक ऐसी पवित्र देवी हो जिसकी चरणधूलि मस्तक पर लगाई जा सकती है। तुम एक सती-साध्वी ललना हो जिसकी तुलना सीता-सावित्री से.....'

'ऐसा न कहो आनन्द !' सुजान का कण्ठ भर आया। 'तुम भावुक हो, कवि हो, सौन्दर्य के उपासक हो इसीलिए ऐसा सोच रहे हो। जो सच है उसे स्वीकारो, सती सीता-सावित्री से मुझ जैसी तुच्छ.....'

'सुजान ! स्वयं को गर्हित न करो। तुम्हारी ऊँचाई का पता मुझे है। जिसके पास ऐसी अलौकिक रूप-राशि हो, ऐसी दिव्य कला हो वह.....'

'आनन्द ! तुम जिसे रूप-राशि समझते हो, उसे लूटने के लिए मनुष्य भेड़िये की भाँति टूट पड़ते हैं, तुम जिस कला पर आसक्त हो, मेरे जीवन की वही बला है। आनन्द ! मैं इन्हीं दोनों से छली गई हूँ। हाँ ! तुम्हें मैं सावधान करना चाहती हूँ कि तुम इस मृग-मरीचिका में मत पड़ना। तुम कला-मर्मज्ञ हो, भाव जगत् के चतुर चितेरे हो, मेरे प्रति तुम्हारा व्यामोह असंगत है। यों समझो मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है जो तुम्हारे जैसे पावन, निश्छल और आत्मबली की भेंट हो सके। मैं जहाँ हूँ जिस कीचड़ में पड़ी हूँ वहीं रहने दो।' कहते-कहते सुजान हाँफने सी लगी। घन आनन्द को उसकी यह तर्कना बड़ी अटपटी लगी। उसे लगा सुजान किसी दर्द से कराह रही है, उसका मनोबल जैसे स्खलित-सा हो गया है। उसके झुककर सुजान के चरणों में मस्तक रख दिया। सुजान चौंककर एक कदम पीछे हट गयी।

'छिः-छिः आनन्द ! तुमने मुझे जीवित ही नरक में डाल दिया। लगता है, औरों की भांति तुम भी वासना के घेरे में घिर गये। तुम्हारे

जैसा उदात्त व्यक्तित्व आज एक वारनारी के चरणों में झुका ? मैं मर क्यों न गयी ?' 'तुम और चाहे जो भी कहो, सुजान ! अपने और मेरे मध्य वासना का नाम कभी न लेना। लगता है तुमने ही मुझे नरक में ढकेल दिया।' इतना कहते-कहते उसे लगा कि अधिक देर वह रुका तो विक्षिप्त हो जाएगा। वह पीछे की ओर मुड़ा—

'जाओ सुजान ! मैं यही समझकर वापस जा रहा हूँ कि कभी-कभी देवता भी चौखट पर सर रगड़ते भक्त को ठुकरा देते हैं।' आनन्द का कण्ठ रुँध गया और वह आगे बोल न सका। सुजान की सूझ पैनी थी। उसने तत्काल भाँप लिया है, कवि हैं साधारण मानव नहीं। भयभीत-सी सुजान उसके आगे लपक कर खड़ी हो गई।

'आनन्द ! मुझमे इतनी शक्ति अथवा सामर्थ्य नहीं कि तुम्हारे इन विशेषणों को धारण कर सकूँ और सुनो तुमने राग छेड़ा है तो सुनो, यह भी ध्यान रहे कि इस भवन से तो जाने के लिए ही लोग आते हैं परन्तु तुम 'लोग' नहीं हो। मेरे आनन्द हो, तुम जा कैसे सकते हो ? रुको, मैं तुम्हारे लिए मधु रस लाती हूँ।' सुजान विद्युत् गति से पार्श्व के कक्ष मे घुसी। आनन्द का मुँह कुछ बोलने के लिए खुला किन्तु किससे बोले ?

थोड़ी देर तक आनन्द अपने मे खोया रहा। सुजान क्या है ? वह समझ नहीं पा रहा था। रूपयौवन-सम्पन्ना नर्तकी अथवा ज्ञान-गरिमा से परिपूर्ण विदुषी ! उसकी दृष्टि मे सुजान सर्वश्रेष्ठ थी। शाही दरबार में उसके ललित नृत्य पर निछावर होते तो उसने अच्छे-अच्छे कुलीन राजाओ, सामन्तो और दरबारियो को देखा था। रंगीले शाह की तो वह इच्छा ही थी। एकाध दो बार जब अर्थ-व्यवस्था पर विचार-विमर्श करने वह शाहंशाह के हरम में बुलाया गया तो वहाँ यही सुजान अपने कोमल करों से शाह को मदिरा पिला रही थी। आश्चर्यमयी ललने ! तेरे रूप-वैशिष्ट्य से तो विधाता को भी दंग होना पड़ेगा। कैसी विकट संगति है ! ऐसी विशुद्ध कान्ति को ऐसा जघन्य जीवन देकर ब्रह्मा भी पश्चात्ताप कर रहा होगा। आनन्द ने मन ही मन इस देवी का वन्दन किया। उसी क्षण

अपने आप मूंद गईं और उसके रोम-रोम में सुजान का नाम गूंजने लगा ।

इतने में रस कलश लिए हुए सुजान कक्ष में आ गई और आनन्द ध्यानावस्थित देख अचरज में पड़ गई । बोली—'कहाँ विचर रहे हो ?' अमृतमय शब्दों से आनन्द ने तुरन्त आँखें खोलीं तभी सुजान से उसे रस-कलश पकड़ा दिया । आनन्द रसपान तो कर रहा था लेकिन मन अतीत में ही था वह बोला—'सुजान तुमने मुझे वासना का संकेत देकर बड़ा अन्याय किया ।'

'तो मुझे दण्ड दो, कही हुई बात तो वापस होने से रही ।'

'नहीं ! दण्ड मैं भोगूंगा ।'

'ऐसा क्यों ? अपराध मुझसे हुआ और दण्ड तुम.....'

'हाँ सुजान ! जब तक ऐसा नहीं होगा, मेरे चित्त में अशान्ति ही रहेगी । जब सारे समाज का दण्ड तुम अकेले ही भोग रही हो तो तुम अपराधिनी कैसे कही जा सकती हो ? अच्छा, इतना बता दो, क्या मेरी किसी चेष्टा से तुम्हें वासना की गन्ध मिली अथवा.....'

'आनन्द ! वासना मनुष्य स्वभाव का अंग है । वासना न हो तो सृष्टि का क्रम रुक जाये । तुमने आज अचानक मेरे चरणों का स्पर्श किया, इसीलिए मुझे ऐसी शंका.....'

'देखो सुजान यह चरण मेरे लिए पूज्य बन चुके हैं । आज तो क्या अब मेरा अभिवादन इन्हीं चरणों को मिलेगा ।'

'नहीं आनन्द ! यह बड़ी घिनौनी बात होगी । जो किसी लोक या युग में न हुआ हो, उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती । और सुनो मैंने अनेक वासना के कीटाणुओं को इन्हीं चरणों पर लोटते देखा है, इसलिए, तुम्हें मैं ऐसा कदापि नहीं करने दूँगी ।'

आनन्द ने उसकी मनःस्थिति को समझते हुए कहा—'देखो सुजान ! मन्दिर की चौखट पर सभी मत्था टेकते हैं, परन्तु भगवान् की मर्यादा को आँच तक नहीं आती ।'

'तुम्हारा यह तर्क मैं स्वीकार करती हूँ आनन्द ! परन्तु एक वेश्या को वह पद नहीं दिया जा सकता जो भगवान् को सहज ही प्राप्त है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम काव्यधारा में गोते लगाते-लगाते स्वाभाविक औचित्य को भुला बैठे हो। तुमने मेरे अतीत को नहीं देखा, न कभी अनुभव ही किया, इसीलिए तुम बहक रहे हो।' सुजान हँस पड़ी और आनन्द मन्त्रमुग्ध-सा उसकी छवि निहार रहा था।

'अच्छा, तो मैं भी सुनूं, वह अतीत क्या है और उसके जान लेने पर कौन-सा परिवर्तन होता है।' आनन्द ने आग्रह भरे शब्दों में सुजान से प्रार्थना की।

'आनन्द ! तुम बड़े भोले हो। मैं तो यही सोचकर हैरान हो जाती हूँ कि तुम जैसे सीधे आदमी को मुगल सम्राट ने अर्थ-मन्त्री का पद कैसे दे रखा है। अरे भई ! मेरा अतीत सुनो तभी अच्छा है। तुम थके से लग रहे हो विश्राम करो। तब तक मैं कपड़े बदल.....'

'नहीं सुजान ! तुम मेरे पास ही बैठो। मैं तुम्हारे विगत जीवन को जाने बिना यहाँ से उठ नहीं सकता।'

'देखो आनन्द ! यह बाल हठ तुम्हें शोभा नहीं देता। एक वेश्या का जीवन कैसा रहा होगा ? यह तो सहज अनुमेय है और फिर तुम मेरा अतीत जानकर करोगे भी क्या ?' कहकर सुजान खिलखिलाकर हँस पड़ी। आनन्द के समक्ष जैसे अनन्त रूप-राशि बिखर गयी हो। उसने सुजान का हाथ पकड़कर पास ही बैठा लिया और कहा—'देखो सुजान ! लोग मुझे बड़ा सम्मान देते हैं, कवि समझते हैं और मुगल सम्राट का मीर-मुंशी मानकर मेरा मुंह देखते रहते हैं किन्तु मैं केवल उतना ही हूँ जितना मेरी सुजान मुझे समझती है। वही मेरे लिए ईश्वर है और.....'

'और आनन्द उसकी पूजा करना अपना कर्त्तव्य समझता है, यही न ?' वह हँसती रही।

'सुजान ! पूज्य वही होता है जिसे मनुष्य की अन्तरात्मा स्वीकार कर ले। क्या तुम्हें मेरे ऊपर किसी प्रकार का संदेह है ?'



'आनन्द ! तुम एक उत्तरदायी नागरिक हो और मैं एक साधारण नर्तकी जो अन्य नागरिकों का मनोरंजन करके पेट पालती है। भला, मुझे क्या अधिकार है कि मैं किसी पर संदेह करूँ ? ईश्वर के लिए इस तुच्छ वारनारी को इतने ऊँचे न उठाओ कि गिरने पर चकनाचूर हो जाए। लगता है, तुम अभी नारी के चक्र में नहीं पड़े, अन्यथा·····'

'नारी का चक्र ! क्या अभिप्राय है तुम्हारा ?'

'आनन्द ! नारी यदि सुन्दर है, नवयौवना है तो वह पुरुष के लिए विनोद की सामग्री है और यदि अधेड़ है तो सौन्दर्य रहते हुए भी दूध की मक्खी। मेरे विचार से पुरुष वर्ग की ओर से नारी का यही मूल्यांकन है ? क्यों ?'

'सुजान ! तुम्हारे हृदय में विप्लव की आग है। कुण्ठा ने तुम्हारा मानस विकृत कर दिया है।'

'ऐसा नहीं आनन्द ! मेरे हृदय का विद्रोह अब शान्त है, कुण्ठा तो कब की लुप्त हो गयी। और फिर तुम्हारे जैसा सहृदय जिस पर कृपालु हो उसे भला ये दोनों कैसे पीड़ित कर सकते हैं ?' कहकर सुजान ने आनन्द का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

'अच्छा आनन्द ! एक बात बताओ कि·····' कहते-कहते वह रुक गई।

'क्या बात है ? बोलो न। रुक क्यों गई ?'

'नहीं, रहने दो। ऐसी बात पूछना उचित नहीं। लगता है तुम्हारी भावुकता का प्रभाव मेरे ऊपर भी···क्योंकि संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति।' सुजान हँसने लगी।

'मुझे पागल न बनाओ सुजान। मुँह तक आई बात रोकी नहीं जाती। जल्दी बोलो।' कहकर आनन्द सुजान का मुँह ताकने लगा।

'अच्छा, सच-सच बताओ, तुम····मुझ····से प्रेम·····' कहकर लजा गई। यह सुनते ही आनन्द को अजीब-सा लगा। उसने सुजान की आँखों में अपनी आँखें डुबा दीं। बड़ी गहराई थी उनमें। सुजान जैसे प्रश्न-चिह्न सी बनी थी। आनन्द ने पूछा—

'सुजान ! तुम्हें कैसा लगता है ?'

'कोई नई बात तो नहीं प्रतीत होती । हाँ ! मुझ जैसी वारनारी से तो सभी प्रेम करना चाहते हैं, परन्तु मुझे तो किसी से प्रेम करने का अधिकार नही । वेश्या जो हूँ ।' सुजान की मधुर मुस्कान बिखर गई ।

'देखो सुजान ! तुम अधिकार की दुहाई मत दो । अच्छा हुआ जो बात-बात में तुमने अपने हृदय का उद्‌गार स्पष्ट कर दिया । मैं सुन्दर नही हूँ इसलिए यदि तुम मुझसे घृणा भी करो तो मेरे ऊपर कोई दुष्प्रभाव पड़ने से रहा । मैंने तुम्हारा बहुत समय नष्ट किया, इसलिए चलता हूँ ।' कहकर वह उठने लगता है ।

'कहाँ चले ? चल देना इतना आसान नहीं जितना तुम समझ रहे हो । देखो, प्रेम एक पवित्र तत्त्व है । जिसका सुन्दर प्रमाण द्वापर की राधा है । कृष्ण ने राधा के दिव्य समर्पण से जो शक्ति अर्जित की उसका प्रदर्शन महाभारत-विजय में स्पष्ट हुआ । ऐसे समझो कि कृष्ण की सफलता के पीछे राधा का ही बलिदान था । इसलिए 'प्रेम' शब्द का उच्चारण भले ही सरल हो, व्यवहार असम्भव नही तो कठिन अवश्य है । तुम मुझसे जो प्रेम करते हो वह मुझे आसक्ति लगती है, वह तुम्हारा मोह है, जो प्रायः एक सुन्दरी और वेश्या के प्रति सभी प्रदर्शित करते हैं । इसीलिए कहती हूँ कि यदि तुम मेरा अतीत जानते तो शायद·····' कहते-कहते सुजान गम्भीर हो गई । घन आनन्द ने अभी तक उसका ऐसा रूप देखा ही नहीं था । वह सोचने लगा—सुजान में ज्ञान का सागर लहरा रहा है । सुजान कहती है कि कृष्ण की शक्ति के पीछे राधा का त्याग था, ठीक ही तो है । कैसा दिव्य समर्पण था वह । प्रेम व्यक्ति को महान् बना देता है ।

'अच्छा सुजान ! मेरी भी सुनो । मैंने अब तक अपने जीवन में किसी भी नारी की कामना नही की । मेरे पिता सम्राट के कृपापात्र थे उनकी महती अभिलाषा थी कि मेरा पाणिग्रहण संस्कार हो जाए किन्तु मैं !

में नहीं रहे तो विधवा माँ की सेवा ही मेरा व्रत बन गया। इसलिए मुझे गृहस्थ बनने का अवसर ही नहीं मिल पाया। एक शुभ दिन मेरे जीवन में आया जब तुम्हें शाही दरबार में देखा। मेरा सौभाग्य था कि मैं तुम्हारी गरिमा को छू पाया। और आज ? आज तुम मेरी आत्मा हो। तुम प्रेम का जो भी पर्याय स्थिर करो, मेरा अन्तर उसी में कृतार्थ हो जाएगा।' आनन्द जैसे हल्का-सा हो गया। सच है, आत्माभिव्यक्ति मनुष्य को निर्मल बनाकर आत्मा में संबल का संचार कर देती है। सुजान अन्दर ही अन्दर गद्गद हो रही थी, परन्तु कुछ टटोलने के लिए उसने जिज्ञासा व्यक्त की।

'अच्छा ! तो सचमुच तुम्हारे जीवन में कोई नारी नहीं आई जिसने तुमसे प्रेम किया हो ?'

'सुजान ! आती तो अवश्य कोई न कोई, परन्तु.....'

'परन्तु क्या ?'

'परन्तु मुझमें ऐसा आकर्षण ही नहीं था. जिससे प्रभावित होकर कोई मुझ अकिञ्चन पर आत्मसमर्पण कर देती।'

'यह तुम कैसे कह सकते हो कि तुम आकर्षक नहीं। तुम्हारी कविता में पशु-पक्षियों तक को रिझाने की शक्ति है फिर नारी तो.....'

'लेकिन यह क्यों भूलती हो सुजान ! कि मेरी स्वर-माधुरी को आकर्षक बनाने वाली भी तो तुम्हीं हो। तुम्हारी पायल की झनकार से मेरे पदों के स्वर झंकृत होते हैं। सच तो यह है कि तुम्हीं मेरे स्वर में बोलती हो। तुम मेरे मन में, ध्यान में तथा आत्मा में साकार बनी हो, मेरी प्रेरणा हो या यों कहो मेरे जड़त्व की तुम्हीं चेतना हो।'

'आनन्द ! तुम व्यामोह में पड़कर ऐसा सोचा करते हो और शायद प्रत्येक कवि के साथ यही होता है। परन्तु सोचने की बात तो यह है कि तुम भाव जगत् के व्यावहारिक जगत् को झुठला नहीं पाओगे। मैं बार-बार तुम्हें सतर्क करूँगी कि मुझ जैसी अभागिनी में अपना निष्कलंक मन मत उलझाओ। मुझसे ऐसी कोई आशा न करो जो आगे चलकर तुम्हें

पीड़ा ही पीड़ा दे सके। भूमि पर रहते हुए भूमि के नियमों का पालन ही श्रेयष्कर है।' सुजान ने उठना चाहा किन्तु आनन्द ने पुनः बैठा लिया। 'और कुछ कहोगी या बस। मैंने तो एक ही बात गाँठ बाँध ली है कि जीवन भर तुम्हें ही अपनी आराध्या मानकर पूजा करूँगा और मरते समय भी मेरी जिह्वा पर तुम्हारा ही पवित्र नाम होगा। तुम्हारा अतीत क्या था ? यह जानना मेरा कार्य नहीं। मैं तो मात्र इतना ही जानता हूँ—सुजान मेरी हर साँस मे है, सुजान के चरण मेरे लिए पूज्य हैं, सुजान मेरी सर्वस्व है, बस।' कहकर आनन्द उठ खड़ा हुआ। अभी द्वार की ओर बढ़ा ही था कि सुजान आगे खड़ी हो गई। वह आनन्द की ओर बड़े अनुराग से निहारते हुए बोली—'आनन्द ! इस प्रकार तुम मुझे सुख से नहीं बैठने दोगे। अच्छा ! आज जाओ। कल शाही दरबार से मैं सीधे तुम्हारे भवन में पहुँचूंगी और सारी स्थिति स्पष्ट करूँगी तब तुम्हारी आँखें खुलेंगी।'

'मेरा अहोभाग्य' कहकर आनन्द जल्दी से बाहर हो गया। सुजान का सिर भारी लग रहा था अतः पर्यंक पर लेट गई।····



सुजान शान्तिपूर्वक लेटी भी न रह सकी। आनन्द की निर्मल मुखाकृति आंखों के आगे थी। उसे स्वयं पर लज्जा आ रही थी। निःसन्देह आनन्द हृदय से उसे चाहता है। उसके प्रेम में शुद्धता, पवित्रता एवं सरलता का पुट है। सुजान मन ही मन आनन्द को अपना आराध्य मान बैठी। आनन्द अपने प्रत्येक पद में 'प्यारे सुजान सुनो' अवश्य जोड़ता है। कुछ भी हो—मैं उसकी इच्छा अवश्य पूरी करूँगी। आश्चर्य है, जब से मैं मुगल सम्राट् के दरबार में आई आनन्द तभी से मुझ पर न जाने क्यों मुग्ध है। वह निष्कपट प्रेम करता है, मेरी एक-एक चेष्टा पर निछावर है, उसका समर्पण मैं स्पष्ट रूप से अनुभव कर चुकी हूं। उसके प्रेम को प्रतिदान अवश्य मिलना चाहिए। उसका शरीर आकर्षक न सही मन सुन्दर है, अन्तर आकर्षक है, स्वर मधुर है, उसकी भावाभिव्यक्ति चरम का स्पर्श करती है, एक सामान्य पुरुष में इन सभी गुणों का होना प्रायः दुष्कर है। और मेरा आनन्द इन्हीं गुणों का आगार है। मुझ जैसी वारांगना को वह प्यार करता है इसे दैवी विधान ही कहा जा सकता है। अथवा प्यार ऐसा ही रोग होता होगा। लेकिन धन्य है आनन्द, धन्य है उसकी निष्ठा। आनन्द ! मैं तो तुम्हारे हाथों बिक गई। सोचते-सोचते सुजान की आंखों में आंसू घिर आए। उसने आनन्दविभोर होकर आनन्द की वही पंक्ति दुहरा दी—

'घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो
इत एक ते दूसरो आंक नहीं।'

वह शय्या से तेजी के साथ उठी और दासी को पुकारा—'निर्मला ! क्या कर रही है रे ?' निर्मला पाकशाला में थी, धुएं से आंखें मलती हुई

दौड़कर आई—'बीबी जी ! भोजन तैयार है, अरे आपने तो अभी तक कपड़े भी नही बदले।' कहती हुई एक ओर खड़ी हो गई।

सुजान ने उसे गले लगा लिया। वह चौंक पड़ी तथा उसे संकोच भी हुआ। वह सोच नही पा रही थी कि आज स्वामिनी को क्या हो गया है ? तब तक सुजान बोली—

'निर्मला ! सच बता, तूने कभी किसी से दिल लगाया है ?'

'दिल ! आज आप यह क्या·····'

'हाँ निर्मल ! जिसने किसी से प्यार न किया हो, वह भी कोई नारी है।' सुजान हँस पड़ी।

'बीबी जी ! प्यार बड़ी बुरी चीज है। मैं कुतिया के पिल्ले को बहुत प्यार करती थी और समय पाकर वह कहीं गायब हो गया तो मेरी नीद हराम हो गई।'

'धत्तेरे की ! मैं कुत्ते को नही, किसी पुरुष से प्यार की बात कह रही थी।'

'आप भी क्या कह रही हैं ? मालकिन ! प्यार मे पुरुष का क्या भरोसा ? कही आप ही का मन तो·····'

'निर्मल ! तू जन्म भर नही समझ पाएगी कि प्यार क्या होता है ? जा, चौके में थाल लगा। मैं कपडे बदल कर आ रही हूँ।' सुजान का अन्तर एक अद्भुत कल्पना से ओत-प्रोत हो रहा था। उसके मन की मुराद पूरी हो गई थी। आनन्द उसके रोम-रोम मे बस चुका था। आज उसे जीवन की सार्थकता की अनुभूति हो रही थी। वह खाने बैठी, क्या खाया ? क्या पिया ? उसे कुछ भी ज्ञात नही। चारो ओर आनन्द ही आनन्द।

निर्मला सेज लगा गई। थकी तो थी ही सुजान शैया पर पड़ते ही निद्रामग्न हो गई। स्वप्नो मे ससार बसने लगा। उसने देखा—उसकी सहेलियाँ उसे दुल्हन बना रही हैं। महावर रंचित चरण, मेंहदी से रचे आकर्षक हाथ, आभूषणो से लदी सखियो के मधुर व्यंग्य सुन

पालकी पर बैठी। कहार लम्बे डग भरने लगे। उसने पालकी पर पड़े पर्दे से सामने की ओर देखा आनन्द ! अत्यन्त सुन्दर, सुडौल, लुभावना, घोड़े को ऐड़ लगाता हुआ आगे-आगे चल रहा था। सुजान की कामना लता पुष्पित-पल्लवित हो रही थी। पालकी से उतारी गई सुजान गीत-वाद्य के मध्य भवन के अन्त:पुर में लाई गई। अब सुजान शैय्या पर घूंघट काढ़े, नीचे सिर किए, शान्त बैठी थी।

सहसा कक्ष के द्वार का पर्दा उठा। सुजान ने उधर दृष्टि डाली उसने अपने प्राणनाथ को बड़ी श्रद्धा से नमन किया और चुपचाप बैठी रही। आनन्द दबे पाँव शैया तक आया, उसने धीरे से घूंघट उठाया और नीचे ही जमीन पर बैठकर सुजान के चरणों में सिर रख दिया। सुजान चौंक पड़ी। बोली 'आनन्द ! उठो, आओ, पास बैठो। देखो मैं तुम्हें कैसी लग रही हूँ ? उठो देखो हूँ न तुम्हारी राधा।' आनन्द शान्त भाव से बैठ गया और उसे निहार रहा था। सुजान प्रेम विभोर हो रही थी। उसने लोगों की सुहागरातों का बहुत विवरण सुन रखा था। उसके जीवन में भी अनेक युवा-पुरुष आये सभी प्रकार के मोद-विनोदी सुयोग सुअवसर आये परन्तु सुहागरात का यह स्वरूप अनोखा ही था। आज ही उसे अपने सच्चे प्रियतम मिले थे। वह हर्षातिरेक में बोल उठी—'मेरे स्वामिन् ! मेरे अन्तर के देवता, मेरे आनन्द !' कह पायी थी कि सहसा आँख खुल गई। देखा तो सामने जलपात्र लिए निर्मला खड़ी मुस्करा रही थी। सुजान ने थोड़ा-सा जल पीकर करवट बदली। थोड़ी देर पहले वह जिस संसार में भ्रमण कर रही थी, उसे ही फिर से वापस लाने का प्रयत्न करने लगी। सुजान उसी स्निग्ध कल्पना में खो जाना चाहती थी। निर्मला वहीं खड़ी रही। सुजान ने पुनः करवट बदली। निर्मला ने अपनी स्वामिनी के प्रसन्न मुख को ध्यान से देखकर कहा—'मालकिन ! आज तो आप दुल्हन-सी लग रही हैं क्या कोई सपना।

'धत्त !' बात काटकर सुजान बोली—'सपने में ऐसा क्या ? जलपान रखकर तू झटपट मेरे वस्त्राभूषण ठीक कर।'

'क्या कहीं जाना है ?' निर्मला ने प्रश्न किया।

'हाँ ! आज दरबार में नृत्य का विशेष आयोजन है। तू जल्दी से नाश्ता तैयार कर दे। भोजन वापसी में होगा।'

'अच्छी बात है। कहकर निर्मला तैयारी में लग गई।

स्नान-ध्यान के पश्चात् सुजान ने जल्दी-जल्दी कुछ खाया और शृङ्गार कक्ष में जा बैठी। अनुरूप शृङ्गार किया। आज ही तो शृङ्गार में उसका मन लगा। बग्घी बाहर लगी और निर्मला के साथ वह शाही दरबार की ओर चली। उसका अन्तर्मन रात के अद्भुत स्वप्न में उलझा हुआ था। बड़ी उत्कंठा से चारों ओर दृष्टि डालती रही कि अकस्मात् कहीं से आनन्द दिखाई पड जाये। आज आनन्द को देखने के लिए उसका अन्तर व्याकुल हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि वह अब वेश्या नहीं एक सौभाग्यवती गृहिणी बन गई है। उसने मन ही मन निश्चय किया कि आज का नृत्य उसका अन्तिम नृत्य होगा। आखिर वह पेट के लिए ही तो ऐसा करती है। वह भली-भाँति समझ गई कि उसके नृत्य पर 'वाह-वाह' करने वाले सभी वासना के भूखे थे। उसे सब याद आया शाह के हरम में बेगमों की कतार लगी हुई थी फिर भी शाहंशाह उसे अपनी बाँहों में समेटने के लिए उन्मत्त हो उठते थे। यह तो सुजान ही थी कि उनके वासनाजाल से बाल-बाल बचती थी। इन सब में एक ही ऐसा चरित्रवली मनस्वी था जिसने सुजान की आत्मा से निष्कपट अनुराग रखा। वह है मेरा आनन्द। जैसा नाम वैसा ही गुण। आज तो मैं केवल अपने आनन्द के लिए नाचूंगी। फिर यदि आनन्द चाहेगा तभी मेरा नृत्य होगा अन्यथा नहीं। आनन्द वासना के कितनी दूर है।

बग्घी शाही दरवाजे पर रुकी। प्रहरी ने अन्दर झाँक कर देखा और आगे बढ़ने का संकेत दिया। निर्मला ने स्वामिनी को उतारा। सुजान को देखते ही सबके मुखमण्डल चमक उठे। दरबार खचाखच भरा था। शूर-सामन्तों के अतिरिक्त विशिष्ट नगर निवासी श्रेष्ठी आदि भी नृत्य का आनन्द लूटने के लिए बैठे थे। सुजान महफिल में पहुँची। शाहंशाह

को आदाव तो उसने जरूर वजाया क्योंकि आदत वन चुकी थी, परन्तु आज उसे ऐसा करना अच्छा न लगा। चारों ओर दृष्टि डाली। किसे ढूंढ़ रही थी, यह केवल वही जानती थी। आनन्द आज दरवार में न था। उसका आसन खाली था। सुजान का कमल की भांति खिला हुआ मुखमण्डल क्षण मात्र में उतर गया। उसके पांव आगे न वढ़ पा रहे थे। सारा उत्साह जैसे हवा में उड़ गया। कुछ और सोचने-समझने का उसे अवसर न दिखाई पड़ा। पीड़ित-सी साजिन्दों के दल में वैठ गई।

आज मृदंगाचार्य हेमचन्द्र भी उपस्थित थे। वे सुजान के गुरु रह चुके थे। गणेशताल पर नृत्य की अभिनव कलाएं उन्होंने ही सुजान को समझायी थीं। वड़ी निष्ठा से सुजान ने यह नृत्य सीखा था और इसके लिए जव उसने गुरु दक्षिणा प्रस्ताव रखा तो हेम ने जो इच्छा प्रकट की उसे सुनकर सुजान लज्जा से जैसे गड़-सी गई थी। सुजान समझ नहीं पा रही थी कि गुरु शिष्य में वासना का सम्वन्ध कैसा ? क्या इससे भारत की पवित्र परम्परा को ठेस नहीं पहुंचेगी। वड़ी कठिनाई से हेम से उसने पीछा छुड़ाया था। आज महीनों के वाद दिखाई पड़े गुरुदेव को सुजान ने हाथ जोड़कर वन्दन किया। सदाशिव सारंगी के तार कस रहा था। खूंटियां ऐंठते-ऐंठते उसने सुजान को अपने पास वैठने का संकेत दिया। सदाशिव सुजान को उस समय से जानता था जव वह एक साधारण नर्तकी के रूप में शाही दरवार में आई थी। सदाशिव ने ही रंगीले शाह से सुजान की सिफारिश की थी। वड़ा उपकार था उसका जिसकी उसने आज तक कभी चर्चा भी नहीं की।

सुजान ने घुंघुरू तो वांधे, परन्तु उसके चरण नाचने के विरुद्ध जैसे विद्रोह कर रहे थे। सवकी आंखें सुजान पर लगी थीं और सुजान के हिरणी-से चकित नयन केवल आनन्द को ढूंढ़ रहे थे। मन मारकर रह गई। सहसा साज छिड़े, ठुमरी ! शास्त्रीय संगीत ! सुजान ने मन ही मन आनन्द का स्मरण किया और थिरक उठी। उसके पैर सारंगी के तारों पर फिसल रहे थे। वह भ्रमित तो हो जाती, परन्तु सदाशिव ने उसे

बार-बार सँभाला । लगभग एक घण्टे तक नृत्य चलता रहा । सुजान को लगा कि सदाशिव की सारंगी उसे नचा रही है क्योंकि हेमचन्द्र बीच-बीच में बेतुकी ताल दे देता था कि उसके पाँव उखड़ते-उखड़ते बच पाते थे । संगीत ही एक ऐसी कला है, जहाँ विद्रोह को पलने का अवसर ही नहीं मिलता है । सब ले दे कर यही कहा जा सकता है कि नृत्य आज जमा नहीं ।

'सुजान ! खुदा की कसम, आज तुमने दिल से नाच नहीं किया ।' शाहंशाह ने बेरुखी से कहा और साथ ही बोले—'अच्छा, छोड़ो इसे, आओ हमारे साथ ।' कहते हुए वे सुजान को साथ लेकर हरम की ओर चले । सुजान को आज हरम में प्रवेश करना भारी पड़ रहा था । वह जैसे काँटों पर पाँव रख रही थी ।

'जहाँपनाह ! आज इस दासी को रुखसत करें, तबियत कुछ·····' सुजान ने विनती की ।

'इंशा अल्लाह ! तुम्हारी तबियत का नासाज़ होना हमारे लिए बेमौत की मौत है । हम अभी हकीम गफूर मियाँ को तलब करते हैं । बात यह है मेरी जान ! बिना तुम्हारे हाथ में जाम का प्याला लिये हमारी तबियत भी दुरुस्त नहीं रह सकती । आओ, आओ ।'

'शाहंशाह ! परवरदिगार ! रहम फरमाइए । इस वक्त मुझे बख्शिए, मैं वादा करती हूँ कि शाम से पहले जरूर हाजिर होऊँगी ।' सुजान ने बड़ी चतुराई से रंगीले शाह से छुट्टी पाई ।

बाहर आकर सुजान बग्घी पर बैठी । लेकिन मानस में उसके आनन्द ही घूम रहा था । वह सोच नहीं पा रही थी कि आनन्द आज दरबार में क्यों नहीं आया ? तमाम आशकाएँ मन में आ रही थीं । जो भी हो आनन्द को दरबार में न देखकर सुजान को बड़ी निराशा हुई । एक क्षण के लिए उसके मन में आया कि उसने आनन्द के यहाँ पहुँचने का वचन दे रखा है फिर विचार बदला । वह [illegible] से निकलता तो साथ ही उसके भवन की ओर चल देती । [illegible] सीधे [illegible] चलता उन्नि

नहीं। वग्घी थोड़ी ही देर में सुजान के मुख्यद्वार पर लगी। उतर कर सुजान अपने शयन कक्ष में पहुँची और धड़ाम से शैया पर गिर पड़ी। कैसी विडम्बना है। यह भी कोई जीवन है। जहाँ जाओ वहीं नोचने-खसोटने की क्रिया। ऐसा लगता है कि वह कोई जीव नहीं, उसका अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं। जैसे, उसे अपने आप कुछ सोचने-विचारने अथवा कोई कदम उठाने का रंचमात्र अधिकार नहीं। अच्छा, अधिकार भी छोड़ो, जीने का अधिकार तो मिलना ही चाहिए। जब इस संसार में अगणित जीव-जन्तु-पशु-पक्षी-पेड़-पौधे अपना जीवन-यापन कर ही रहे हैं, तो मनुष्य के लिए ऐसी आपा-धापी क्यों ? क्यों एक को खाकर ही दूसरा जीवित रहना चाहता है। आज मुझमें यौवन है, कल नहीं रहेगा। जिन पांवों में आज घुंघुरू झनक कर असंख्य रसिकों का अन्तर झंकृत कर देते हैं, हो सकता है कल इन अभागे पैरों में थिरकने की शक्ति ही न रह जाए। यह सब कुछ सम्भव है। फिर तो आनन्द ही ठीक कहता है। इसलिए, समय रहते क्यों न उसकी बात मान ली जाए उसका मन गृहिणी बनने के लिए बड़े वेग से ललचाया। कुछ समय तक वह दिवा-स्वप्नों में ही खोई रही।

अचानक उसने निर्मला को पुकारा और वह दौड़ती हुई आकर बोली —'क्या बात है ? बीबी जी ! मैं भोजन तैयार करने में लगी हूं। आप को भूख भी लगी होगी। सुबह से खाया ही क्या है ?'

'निर्मल ! खाना-पीना छोड़ो। यह बताओ तुमने आनन्द का भवन देखा है ?'

'हां मालकिन ! उनका भवन इस शहर में कौन नहीं जानता ? उसी मुहल्ले में मेरा ननिहाल है बीबी जी ! उनकी हवेली के सामने ही एक विशाल बरगद का वृक्ष है जहां वट-सावित्री अमावस्या को बहुत बड़ा मेला लगता है। किन्तु, आप उनका घर क्यों पूछ रही हैं ?'

'निर्मला ! बग्घी तैयार कराओ, इसी समय वहां चलना है।'

'जैसी इच्छा' कहकर निर्मला कुछ दूर चली पुनः लौटकर—'लेकिन स्वामिनी ! भोजन आदि से निवृत्त होकर चलना उचित होगा। बिना खाए-पिए किसी के घर पहुँचना·····'सुजान ने बात काटकर—'निर्मल ! तू वहीं से अपनी ननिहाल चली जाना और खा-पीकर आ जाना।'

'किन्तु आप ? मुझे अपनी चिन्ता नहीं मालकिन, आपकी है। यहाँ आधा भोजन बन चुका है अब इस प्रकार यहाँ से चल देना—'तू जा जल्दी बग्घी तैयार कराके द्वार पर लगवा, बस।' कहकर सुजान शृङ्गार-कक्ष में पहुँची। बड़ी देर तक विचारती रही, कैसा शृङ्गार करे, उसके समक्ष यह एक भारी समस्या आ खड़ी हुई। साधारण बात तो नहीं, आखिर उसे अपने आनन्द के घर जाना है। मन में सुनहली कल्पना के आते ही उसने ढाका की धानी रंग की साड़ी निकाली आँचल डाला ही था कि विचार बदल गया। वहाँ तो शुद्ध-सात्विक वेष की आवश्यकता है। उसने झटपट श्वेत रंग की धोती पहन ली। जूड़ा बाँधा और गले में एक साधारण-सा हार डाल कर वह कक्ष के बाहर आ गयी। यद्यपि सुजान ने कोई शृङ्गार नहीं किया था तथापि आज वह सर्वाधिक सौंदर्य-मयी लग रही थी। जब वह बग्घी में बैठी स्वयं निर्मला को ही विचित्र सा लगा।

बग्घी बीच बाजार से होकर निकली। सुजान भावी कल्पनाओं में खोयी थी। न जाने कितने समय बाद आज वह किसी सम्भ्रान्त नाग-रिक के भवन में जा रही थी। उसे रात का स्वप्न भी अक्षरशः याद आ रहा था। वह कभी तो अपने सौभाग्य पर मन ही मन इठला उठती तो कभी शान्त हो जाती। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था उसकी साँसें तीव्र होती जा रही थीं। उत्कण्ठा बढ़ रही थी।

इतने में बग्घी एक आलीशान हवेली के सामने रुकी। सुजान का जी धक्क से हुआ। उसे लगा, आनन्द ही उसे उतारने आ रहे परन्तु यह तो कोई और है। एक अधेड़ व्यक्ति ने पूछा—'बीबी कहाँ जाएँगी ?' सुजान मौन थी। 'हम घन आनन्द से मिलने आए

निर्मला ने तपाक से उत्तर दिया। 'परन्तु बेटी ! आनन्द तो कुछ पहले शाही दरबार की ओर गए हैं। आइए माँ जी हैं। मैं उन्हें खबर देता हूँ' कहते हुए वह व्यक्ति हवेली के अन्दर बढ़ा। सुजान को काटो तो खून नहीं। धोखा हुआ। हाय रे मनुष्य के मनोरथ। तेरे अस्तित्व में रंच-मात्र भी स्थायित्व नहीं। अभी तक वह नाना प्रकार की कल्पनाओं में विचर रही थी लेकिन क्षण में सब छू मन्तर। सुजान की इच्छा हुई कि वह लौट चले।

तभी आनन्द की माँ गोमती देवी द्वार पर आईं। उन्हें देखकर श्रद्धा से सुजान की आँखें भर आईं। उसने आगे बढ़कर गोमती के चरण छुए। गोमती के लिए वह अपरिचित थी किन्तु शुभ्र वेप पर वह मोहित हो गयीं। उन्होंने सुजान को गले से गला लिया।

'बेटी ! युग-युग जिओ। चलो, अन्दर चलो।' सुजान मंत्रमुग्धा-सी गोमती के पीछे-पीछे चली।

भवन के मुख्य द्वार से अतिथिशाला लगी हुई थी। सुजान की दृष्टि पड़ी तो वह आश्चर्य चकित हो गई। वह वहीं पर रुक गई, सामने दीवार पर एक चित्र अंकित था जिसमें राजा जड़भरत के वाण से विद्ध हिरणी नदी के दूसरे तट तक उछल कर गई परञ्च हिरणशावक को जन्म देकर मर चुकी थी। कलाकार ने मृगी की अधखुली आँखों में ऐसा जादू दिखाया था कि उसे देखते ही सहज प्रतीति हो रही थी कि अपने सद्यः उत्पन्न शावक को चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दे रही थी। उसकी ममता चित्र में साकार हो उठी थी इसीलिए सुजान उसे देखते ही सारा-कथानक आत्मसात् कर गई थी। जैसे उससे रहा नहीं गया, वाणी मुख-रित हुई—'माँ जी !'

'कहो बेटी ! इस चित्र के बारे में.....'

'हाँ माँ ! यह चित्र बड़ा करुण है। कितना दिव्य हृदय होगा उनका जो नित्यप्रति.....'

'बेटी ! आनन्द के पिता जी इन चित्रों के बड़े शौकीन थे। इस

चित्र को तो वे घण्टों देखते और रो उठते थे। इसे एक बंग चित्रकार ने उरेहा था। बेटी! इसे बनाने में वह दो महीने जुटा रहा और उसके नखरे से हम सब तंग आ गए थे। उसे रंग पसन्द करने में दो-दो घण्टे लग जाते। और सबसे बड़ी परेशानी तो यह थी कि वह मांसाहारी था, भाषा-वाणी बड़ी अटपटी। तुम जानो, हम लोग ठहरे शुद्ध वैष्णव! लगता है, बेटी तुम भी·····'

'हाँ माँ जी! हम वैष्णव हैं।' सुजान ने निर्मला की उंगली दबाकर उसे अलग हटने का संकेत किया।

'माँ जी! उस चित्रकार से कहीं अधिक सहृदय तो आनन्द के पिता थे जिन्होंने चित्र के लिए ऐसा कथानक चुना। यह चित्र तो माँ जी! भागवत् महापुराण के राजा जड़भरत की कथा से सम्बन्धित है।'

'तो तुम्हें क्या भागवत् से काफी रुचि है। आओ बेटी, यहाँ बैठे अरे, मैंने तो तुम्हारा परिचय तक नहीं पूछा।'

'माँ जी! सबसे बड़ा मेरा परिचय तो यही है कि मैं आपकी बेटी जो हूँ। वैसे तो इस समय अपना कहने को मेरा कोई भी नहीं है।' कहते-कहते सुजान का मुख उतर गया।

'बेटी! दुःखी मत हो। तुम्हारा वेष देखकर ही लगता है कि शायद तुम विधवा हो चुकी हो लेकिन तुम कभी-कभी मेरे पास आ जाया करो।'

'हाँ माँ! आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी आनन्द के मुख से आप-की प्रशंसा सुनी थी। आज मेरी सेविका ननिहाल आने लगी मैं भी उसके साथ आप से मिलने आ गई।'

'बड़ा अच्छा किया बेटी! देखो, मैं भी आनन्द के पिता जी के न रहने पर दुःखी जीवन बिता रही हूँ। लाख आग्रह करने पर भी आनन्द विवाह के लिए तैयार नहीं हो रहा! मेरी भी अवस्था हो चली। सोचो-यदि मेरी भी आँखें मुँद गईं तो वह अकेला रह जाएगा। इतनी बड़ी हवेली, ये नौकर-चाकर एक कुलवधू के बिना सभी कुछ सूना रहता है।'

'लेकिन माँ जी ! आनन्द ने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया ? क्या कोई लड़की ही उन्हें पसन्द नहीं आई ?'

'क्या बताऊँ ? बेटी ! लड़कियाँ तो एक से एक हैं—सुन्दरी और गुणवान्। एक-दो के घरवाले तो बहुत दिन से मेरे पीछे पड़े हुए हैं परन्तु आनन्द का मन तो एक नाचने वाली में लगा है। उस कलमुँही ने न जाने कौन-सा जादू कर दिया है कि रात-दिन उसी का नाम जपता है।' सुनते ही सुजान का चेहरा फीका पड़ गया। समझ तो वह सब कुछ गई फिर भी सत्य को जानने के लिए बोली—'माँ जी ! वह नाचने वाली कौन है ?'

'ना जाने बेटी ! कौन है ? उसे सुजान कहते हैं। शाही दरबार में नाचती है। बेटी ! वह रण्डी है। एक प्रकार से उसने तो मेरा घर बरबाद कर दिया। आनन्द उसके चक्कर में ऐसा उलझा है, कि जो भी गीत-भजन लिखता है सब में उसी का नाम आगे रहता है। मुझे तो वह कभी दिखी नहीं। आनन्द ने कल बताया कि वह आज यहाँ आने वाली थी। अभी तक तो वह नहीं आई, शायद उसी की खोज में आनन्द कहीं पागल बना घूम रहा होगा।' गोमती के मुख पर घोर निराशा थी। भावों का भभका लगते ही उस वृद्धा के नयन से दो बूँद ढुलक पड़े। सुजान का मन जैसे विषाक्त हो उठा। अब उसके लिए यहाँ एक क्षण भी बैठना दूभर हो रहा था। आँसू पोंछते हुए गोमती ने पुनः आह भर कर कहा—'बेटी ! मेरी तो समझ में नहीं आता है कि मैंने सुजान का क्या बिगाड़ा है जो वह इस प्रकार का प्रतिकार कर रही है। सच तो यह है कि यदि वह मुझे मिल जाती तो मैं आँचल पसार कर उससे इतनी ही भीख माँगती कि मेरा आनन्द मुझे वापस कर दो। वह वेश्या भले हो लेकिन मुझे विश्वास है बेटी ! वह मेरी प्रार्थना अवश्य मानेगी क्योंकि उसके पास भी नारी हृदय तो होगा ही। इस भवन के बुझते दीपक को सँभाल लेगी। सुना है वेश्याएँ भी कभी-कभी त्याग-मूर्ति बन जाती हैं। आज आनन्द ने कुछ खाया-पिया तक नहीं उसी के पीछे जाने कहाँ-कहाँ

भटक रहा होगा। कुल की मर्यादा तो धुल ही गई साथ ही वंश का दीपक भी बुझा ही समझो। क्या बताऊँ बेटी ! सुजान ने तो हमें कहीं का नहीं रखा। क्या तुमने कभी सुजान को देखा है ?

यह प्रश्न ऐसा आघात-सा लगा कि सुजान को अपने लिए संभालना ही कठिन हो गया। उसे लगा किसी ने उसके सिर पर शिला पटक दी हो। वह आँख बचाकर चित्र देखने लगी। इतने में पीछे से आनन्द की पदचाप सुनाई पड़ी। वह बड़े वेग से कक्ष में आया और सामने सुजान ही पड़ गई—'सुजान ! तुम यहाँ आ गई हो ! और मैं तुम्हें ढूंढ़ने दरबार गया, तुम्हारे घर गया।' माँ की ओर मुड़कर—'माँ जी ! यही वह सुजान हैं जिनके ज्ञान-गुण-शील की मैं चर्चा किया करता था।'

सुजान ने तो जैसे कुछ सुना ही न हो। झटके से उठकर निर्मला के साथ बग्घी पर जा बैठी। माँ जी के चरण छूना तक भूल गई।

'सुजान ! क्या हो गया तुम्हें ?' कहते हुए आनन्द दौड़ा पर बग्घी आँख से ओझल हो चुकी थी। वह लौटकर माँ के पास आया और बोला—'माँ ! अवश्य ही तुमने सुजान का अपमान किया होगा। भला घर आए हुए को·····'

गोमती ने अपनी भूल स्वीकार की और आदि से अन्त तक सब कुछ बता दिया। आनन्द कटे वृक्ष-सा वहीं फर्श पर गिर पड़ा। माँ को तो जैसे काठ मार गया।

सुजान सारे रास्ते बग्घी में रोती रही। यद्यपि राजपथ पर बग्घी की खड़खड़ाहट होती रही और तीव्र गति के कारण हिचकोले भी कम नहीं थे तथापि सुजान की सिसकियाँ निर्मला स्पष्ट रूप से सुन रही थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि आखिर हुआ क्या? आनन्द की माँ के साथ स्वामिनी का बड़ा मधुर वार्तालाप चल रहा था, वह दूर बैठी थी तो भी उसका अनुमान था, जैसे माँ-बेटी वर्षों के बाद मिली हों और जैसे ही आनन्द आया सुजान झटके से उठ खड़ी हुई और तीर की भाँति बग्घी में जा बैठी। जिस आनन्द से मिलने के लिए वह आतुर होकर बिना खाये-पिये ही घर से भाग आई थी वही आनन्द जब मालकिन के सामने पड़ा तो तेवर ही बदल गये! निर्मला जैसे किसी पहेली में उलझ गई। उसने बग्घी में बैठी सुजान को देखा तो उसके नेत्र सूज गये थे। आँसू तो रुकते ही न थे। बार-बार पोंछने पर भी आँचल तक भीग गया था। निर्मला का भी कण्ठ भर आया। अश्रु वेग रोककर रुँधे कण्ठ से बोल पड़ी—'मालकिन! क्या बात है? मैंने आपको कभी ऐसी स्थिति में नहीं देखा। आज ऐसा क्या हो गया जो आप सारे रास्ते इस प्रकार.....' कहते-कहते निर्मला फफक पड़ी। निर्मला के रुँधे कण्ठ ने जैसे भावों का सेतु तोड़ दिया। सुजान खुलकर रो पड़ी। जितना ही निर्मला ढाँढ़स बँधाती उतना ही सुजान का रुदन तीव्र होता और निर्मला स्वयं लाचार होकर रो पड़ती। जैसे विधाता ने पीड़ा के लिए ही नारियों का निर्माण किया। मानो संसार की लाचारी, बेवसी और दर्द नारियों के ही हिस्से में पड़ा हो। मार्ग पर दोनों ओर आते-जाते जनवर्ग को क्या पता कि इस आलीशान बग्घी में करुणा स्वयं विलाप कर रही है। जिस

जाति के अस्तित्व ने ब्रह्माण्ड को खड़ा किया, जिसकी ममता से अगणित जीवों को जीने का सहारा मिला, जिसने बड़े-बड़े शूर-वीरों को जन्म दिया वही आज ऐसी हो गयी कि कहीं तिनके का भी सहारा मिलने की गुंजाइश नहीं। जिन नयनों की कोर के साथ पुरुषों के हृदय में गुदगुदी हो उठती थी, आज उसी में अश्रु का सागर! यह कैसा अन्याय?

बग्घी जब बाजार से आगे बढ़ी और राजमार्ग अपेक्षाकृत शान्त हो चला तो सुजान के अन्तर का द्वन्द्व भी कुछ हल्का हुआ। शायद पीड़ा के आँसू निकल जाने पर कुछ शान्ति-सी लग रही थी। वह सोचने लगी—इसमें आनन्द की हो माँ का क्या दोष? संसार की सभी माताएँ अपने पुत्र का हरा-भरा संसार देखना चाहती हैं। दोषी आनन्द है, अकेला आनन्द! आज जिस अपमान का विष-घूंट उसे गले के नीचे उतारना पड़ा, उसके लिए आनन्द ही उत्तरदायी है, जिसे वह भावावेश में अपना सब कुछ मान बैठी थी। आखिर वह उसी से छली गई जिस पर अपनी रक्षा का भार डालकर वह निश्चिन्त होना चाहती थी। उसने अपने उन्मत्त मन को धिक्कारा, हृदय में कुढ़ी। डूब मर सुजान! एक साधारण वेश्या होकर भी तू किसी गृहस्थ की हृदय स्वामिनी बनने चली थी, इसीलिए मुँह-तोड़ उत्तर भी मिला। एक धूल कण का इतना साहस कि गगन के चन्द्र को चूमने के लिए उड़े। ठीक ही है तभी तो पैरों तले रौंद दिया जाता है। हाय रे दुराशे! तूने सुजान को कहीं का न रखा। तू रण्डी है, नाचने वाली है, लोगों के मन बहलाने का साधन मात्र है, बस! तेरी यही सीमा है। संकल्प कर ले, अब ऐसा दुस्साहस कभी न करना। इसी में कुशल है। वह स्वयं को समझाने लगी। मन ही मन धिक्कार के स्वर भी फूट रहे थे। सिर उसका चकराने लगा और निर्मला के देखते-देखते वह बग्घी के अन्दर ही विक्षिप्त होकर गिर पड़ी। उसका मुख-मण्डल ढलते सूर्य की भाँति पीला पड़ गया। निर्मला के मुख से चीख निकल गयी। बग्घी रुक गई। चालक ने उतर कर पूछना चाहा, परन्तु

ला बोली—'रमजान चाचा ! बग्घी आगे बढ़ाओ नहीं खामखा भीड़ जाएगी।'

'अच्छा बेटी !' कहकर रमजान ने घोड़ों को आगे बढ़ाया। सुजान भवन निकट ही आ गया था। थोड़ी देर बाद बग्घी द्वार पर रुकी। र्मला सहारे से भवन में लाई। भवन की बारादरी में सदाशिव जाने व का बैठा था। जिस समय सुजान को इस प्रकार से अन्दर ले जाया या उसका हृदय धक् से रह गया। 'क्या बात हो गई ?' सोचता हुआ वह बाहर ही बैठा रहा। उसके लिए एक-एक क्षण एक वर्ष की भाँति लग रहा था। इतने में निर्मला बाहर आई तो सदाशिव बोले—'क्यों निर्मल ! मेरी बिटिया कैसी है ?'

आप अन्दर चलिये बाबा, कहकर निर्मल फिर अन्दर की ओर मुड़ी। पीछे-पीछे भारी पाँवों से सदाशिव भी शयन कक्ष में पहुँचा। सुजान अब होश में थी। सदाशिव ने 'हरि ॐ' कहकर हृदय को सांत्वना दी। वह पर्यंक के सामने पड़ी चौकी पर बैठ तो गया, परन्तु उसका मन किसी आशंका से बार-बार भयभीत-सा होता जा रहा था। वह सुजान को अपनी धर्म बेटी मानता था। निस्सन्तान अवश्य था, किन्तु सुजान ने उसे सन्तान का ही सुख दे रखा था।

सुजान ने आंखें खोलीं तो सामने सदाशिव को देखा और उसी प्रकार लज्जावनत हो गई जैसे अनजानी चूक पर बेटी अपने बाप से लजाती है। निर्मला कलश में गुलाब जल लाई और पर्यंक पर बैठकर सुजान का मुंह धोने को हुई ही थी कि सुजान वेग से उठ बैठी और हँसती हुई बोली 'चल हट, जल मुझे दे। मुझे हुआ क्या है ? भली-चंगी हूँ तू तो अपना प्यार दिखाकर अच्छे-भले को भी मरीज बना देना चाहती है।' सुजान अपने स्वभाव के अनुसार हँसती हुई उठी और मुंह-हाथ धोकर वापस आते ही बोली—'बाबा आप कब आये ? मैं तो आपसे पूछना ही भूल गई। निर्मल ! तू पाकशाला में जा बड़ी भूख लगी है। बाबा भी साथ ही भोजन करेंगे क्यों बाबा ?'

'हाँ बेटी ! आज तो मुझे भी भोजन नसीब न हो सका । राज-दरबार से मैं सीधे घर जाना चाहता था कि शाही फरमान आ गया—सायंकाल रंगीले शाह के हरम मे नृत्य होगा । शायद तुमने शाह को ऐसा ही वचन दिया ।'

'बाबा ! शाह तो एक पल भी मेरे बिना नही रह पाते । मैं उनसे जितना ही पीछा छुडाती हूँ वे उतना ही अपने पास की चिन्ता में रहते हैं । मैं तो तंग आ गयी ।'

'मेरी रानी बेटी के पास कला ही ऐसी है कि शाह क्या भगवान् को भी इच्छा"""।'

'तो भगवान् अपने पास क्यो नही बुला लेते ? इस नारकीय जीवन मे मुक्ति तो मिल जाती ।'

'छिः बेटी ! ऐसा नही सोचा करते । बात यह है कि जीवन हँसी खेल नही । इसी जीवन की रक्षा हेतु राजर्षि विश्वामित्र ने कुत्ते का अधपका मास खाया था । न जाने जीवन जीने के लिए लोगों को क्या-क्या करना पडता है । फिर तुम तो प्रतिभावान् हो । तुम्हारी कला की जो शोहरत है, ऐसा सौभाग्य शायद ही किसी को मिला हो । मैंने तो ईरानी नर्तक गौहरजान के नृत्य मे भी सारगी बजाई, सौराष्ट्र की परी चित्राबाई के साथ भी साज साधे, बगाल की सुनयना के भी बडे रसीले हाव-भाव देखे, परन्तु अपनी बिटिया सुजान इन सब के परे है ।' सदाशिव यद्यपि ठीक ही कह रहा था, परन्तु सुजान को यह सब खल रहा था । वह कुछ बोलना ही चाहती थी कि निर्मला बीच मे टपक पडी—'पहले आप सब भोजन पाइये । आज तो जैसे निर्जला एकादशी का व्रत ही हो गया । चलिये, झटपट ।' सभी निर्मला के साथ भोजन कक्ष में पहुँचे । सुजान चौके मे बैठी लेकिन एकाध कौर से अधिक गले के नीचे न उतार सकी । आज उसे अच्छा नही लग रहा था ।

पाकशाला से लौटकर सदाशिव तो चला गया और सुजान पर्यंक पर गिर पड़ी । ताम्बूल एक ओर रखा रहा वह सोच मे डूबी रह

बाबा का कहना है—हरम में बेगमों को नृत्य दिखाया जाय। उसे अब याद आया। उसने शाह से सायंकाल आने का वादा भी किया है। उसने सोचा ठीक है। उसका तो काम ही नाचना गाना है। यदि घोड़ा घास से वैर कर ले तो खाएगा क्या? शाह की कृपा से ही तो वह सुविधा पूर्ण जीवन बिता रही है। इतनी बड़ी हवेली, नौकर-चाकर! रंगीले शाह के नृत्य-प्रेम को धन्यवाद दो अन्यथा कहीं किसी गली-कूंचे में कोठे की रण्डी होती। फिर, लगभग पाँच वर्ष हो गये, शाह ने आज तक उससे कोई जोर-जबरदस्ती नहीं की। शाह ने वैसा कोई कदम नहीं उठाया। तब उसे शाह की इच्छा ठुकराने का रंचमात्र अधिकार नहीं। शाह मनुष्य के रूप में देवता है।

सदाशिव हाथ-मुँह धोकर जब पुनः आया तो सुजान पर उन्माद-सा छा रहा था। उसने पूछा—'बाबा मृदंग पर कौन ताल देगा?' 'चिन्ता न करो बेटी।' सदाशिव पूरे विश्वास के साथ बोला—'ताल तो हेम ही देगा किन्तु मैंने उसे ठीक से समझा दिया है।' 'न बाबा' सुजान ने असहमति व्यक्त करते हुए कहा—'बाबा! हेम पर मुझे तनिक भी विश्वास नहीं। हेम के स्थान पर ब्रजवासी को ही बैठाइये।' बेटी! तू तो बात नहीं समझती। इसमें अपने बाबा की ही मान लिया कर। बनवासी तुम्हारे नृत्य लायक न बजा सकेगा। हेम ने इस कला की बहुत अच्छी शिक्षा पाई है। जैसे-जैसे तुम्हारे चरण भूमि पर नृत्य की कलाएँ देते हैं वैसे ही उसकी अंगुलियाँ मृदंग पर नाचती हैं। आजकल तो वह घन आनन्द के पदों पर पागल-सा बना रहता है। बेटी! आज तो आनन्द दरबार में दिखे नहीं। शायद सायंकाल के आयोजन में पधारें।' सुजान का मुख उतर गया। वह जैसे चोरी करते हुए पकड़ी गई। उसने बात का रुख बदलते हुए कहा—'बाबा! रंगीले शाह के हरम में मैं कभी नहीं नाची, इसलिए मेरा मन रह-रहकर फिर रहा है।'

'बेटी! शाह की बड़ी बेगम हसीना बानो के भाई गुलाम हुसैन ईरान से पधारे हैं। वे भी शाही वंश के ही हैं और नृत्य-कला के प्रेमी

हेम सतर्क हो गये। हेम मयूर ताल का संकेत देकर मृदंग का मधुर नाद देने लगा।

सुजान थिरक उठी। मयूर ताल हेम ने सुजान के बड़े आग्रह पर सिखाया था। आज इस ताल का प्रथम प्रदर्शन था। फिर भी सुजान में आत्मबल की साफ दृढ़ता थी। जैसे घनी मेघमाला को देखकर उन्मत्त मयूर अपनी प्रिया की खोज में नाद करता हुआ इधर-उधर चक्कर काटता है और उसे पाते ही बड़ी रसिकता से उसे रिझाता है, पंख फैलाकर बड़ी आकर्षक मुद्राओं में नाचना है ठीक उसी प्रकार सुजान ने नाचना प्रारम्भ किया। उसने ऐसी नृत्य मुद्रा बनायी कि अपने कौशल से सारी महफिल में नाचते हुए मयूर के दृश्य का साक्षात्कार करा दिया उसके चरण भर दिख रहे से। वेणी मयूर शिखा की भाँति ऊपर उठ गई थी साथ ही लंहगा पंखों की तरह छितरा गया था। शाह गद्दी से उछल पड़े।'सुभान अल्लाह! सुजान! आज तुमने कमाल कर दिया।' शाह पर जाम का प्रभाव खूब था शाही मेहमान तो यह नृत्य देखकर दंग हो गया, उसने जैसे प्रथम बार आज नाचता हुआ मोर देखा। उसके गले में मणियों की तीन लड़ वाली माला थी जिसके निम्न भाग में एक बहुमूल्य हीरा जगमगा रहा था। देखते ही देखते वह माला सुजान के गले में विराजने लगी। सारी महफिल इससे ओत-प्रोत हो रही थी।

हेमचन्द्र ने आज सचमुच सुजान के नृत्य में चेतना फूंक दी। जिस समय सुजान पंख फुलाकर मयूर की रस भरी नृत्य मुद्रा प्रस्तुत कर रही थी उस समय हेम मृदंग पर अपने प्राणों की बाजी लगा चुका था। कभी मद्र, कभी मध्य और कभी मन्द स्वर सप्तकों को उसने जिस यथार्थता के के साथ ताल-बद्ध किया, उस पर आज सुजान बहुत खुश थी। नृत्य समाप्त होते ही वह सर्वप्रथम हेम के पास पहुँची। हेम की आँखें नीचे थीं, सुजान को विश्वास नहीं हो रहा था कि क्या यही वह हेमचन्द्र है जिसने अपनी शिष्या से प्रेम का प्रतिदान माँगा था? आज उसे हेम बड़ा पवित्र दिख रहा था। उसकी अन्तरात्मा ने हेम को नमन किया। वह

मन ही मन हेम के विषय में सोच रही थी क्योंकि उसे गणेश नृत्य और मयूर नृत्य सिखाने वाला यही हेम था जिसके कारण आज वह इतना सुन्दर प्रदर्शन कर सकी थी। वह यह सोच ही रही थी कि कर्ण पट पर आनन्द की मधुर ध्वनि टकराई। घन-आनन्द के गीतों में आज उसे बड़ी वेदना-पीड़ा तथा करुणा की झलक मिली। उससे सुना नहीं जा रहा था। उसके मानस में गत घटनाओं के दुःखद दृश्य पुनः उभर आए। वह सबके सामने ही उठ कर अन्तःपुर की ओर चली गई। जाते-जाते उसे एक पंक्ति सुनाई दी—

'कछु नेह निबाहनो जानत ना
तौ सनेह की धार में काहे धंसे।'

जो सुजान के हृदय में चुभ गई। वह लौटकर पुनः उसी स्थान पर बैठ गई। हाय रे नारी हृदय! कितना विरोधाभास पलता है? कैसे-कैसे विपर्यय बनते बिगड़ते हैं? सुजान का अन्तर घनी पीड़ा से कराह उठा। जैसे-जैसे आनन्द के पद सभा मण्डप में गूंज रहे थे, वैसे-वैसे सुजान के अन्तर में कचोट हो रही थी। उसे लग रहा था कि जैसे कोई उसका मन निरन्तर अपनी ओर खींचता जा रहा था। उसने सिर ऊपर उठाया। देखा, शाही घराने की बेगमें शाहजादियाँ चिलमन उठाकर आनन्द की ओर एकटक देख रही थी। जिन पर पर्दा पड़ा था, वे उस पर्दे को दूर हटाकर आनन्द के गीतों पर मर-मिट रही थीं, लोक-लज्जा को तिलांजलि दे रहीं थी। और सुजान! जिसका पर्दा फाश हो चुका है, वह अपने ऊपर बार-बार पर्दा डाल रही थी। जिन बेगमों की लज्जा और मर्यादा से लोक-लज्जा स्वयं लजाती है वे आनन्द की पीयूप-लहरी का पानकर रही हैं और सुजान! जो सरे दरबार नाचा करती थी आज वही आनन्द की स्वर माधुरी का पान करने में असमर्थ हो रही है। उसमें ईर्ष्या का भाव उभरा। मन विषाक्त हो गया। सारे तन बदन से अग्नि के स्फुलिंग-से निकलने लगे। स्वाभाविक ही है। नारी सब कुछ सहन कर सकती है लेकिन अपने समक्ष अपने प्रिय पर किसी और नारी

की ललचाई दृष्टि भी पड़ते नहीं देख सकती। उसे पंडितराज जगन्नाथ के जीवन की वह ऐतिहासिक घटना स्मरण हो आई। यही शाही दरबार था जहाँ संस्कृत के उस प्रकाण्ड पंडित की शिखरिणी गूंजती थी और यही मुगल सम्राट् शाहजहाँ की बहिन रुखसाना सुल्ताना उस स्वर-माधुरी पर निछावर हो गई थी। अभी ४०-५० वर्षों की ही तो बात है। सोचते-सोचते सुजान के शरीर में जहर-सा फैल गया।

सुजान ने सभा की मर्यादा का भी ध्यान न रखा। उठी और आनन्द के सामने एक क्षण के लिए रुकी जैसे सबको बता देना चाहती हो कि उसके सिवा आनन्द पर किसी का अधिकार नहीं लेकिन दूसरे ही क्षण उसका भाव बदला और वह बाहर निकल गई। यह दृश्य सबने देखा पर कोई कुछ न बोला। आनन्द अपने आसन से उठा और धीरे से बाहर निकला। उसने देखा—सुजान हेमचन्द्र से घुल-मिलकर बातें कर रही है। आनन्द ने पास जाकर कहा—'सुजान ! तुम मुझसे कुछ कहना चाहती थीं ?' 'जी नहीं।' सुजान ने कुछ विचित्र ढङ्ग से कहा और दीवाने-खास से बाहर हो गई।

आनन्द का भग्न-हृदय पुनः आघात पाकर तड़प उठा। चोट लगे अंग पर बार-बार चोट लगना प्राकृतिक नियम है परन्तु हृदय की कोमलता इसे सहन नहीं कर पाती। आनन्द की आँखों के सामने जैसे अँधेरा छा गया। आज सारा दिन वह व्याकुल रहा। शाही दरबार में भी न आता किन्तु सुजान का नृत्यायोजन सुनकर उसे आना पड़ा था। जिस सुजान की एक झलक पाने के लिए वह दरबार में बेचैन-सा बैठा रहा, मन में रह-रहकर टीस उठती थी और वह बेदर्दी से उसे दबाता रहा, वही सुजान जब मयूर-मुद्रा में नाच रही थी तो उसने आनन्द की ओर ताका भी नहीं। अपराधी को दण्ड की व्यवस्था तो स्वाभाविक है, परन्तु बिना अपराध के सुजान ने उसके प्रति इतनी उपेक्षा दर्शायी जिससे आनन्द का अन्तर बिलख उठा। उसकी आँखों में आँसू नहीं आए फिर भी भारी अशान्ति व्याप गई। उसमें दो भाव एक साथ उभरे, दया-भाव

और आक्रोश । मन कभी दया से भर जाता तो कभी आक्रोश से । उसे अपने ऊपर इसलिए दया आ रही थी कि आज उसे क्या कमी है । वह अर्थ-मन्त्री है, कुलीन वंश में उत्पन्न हुआ है । मान-सम्मान यश-गौरव और प्रतिष्ठा उसके चरण चूम रहे हैं और वह मारा-मारा फिर रहा है । आक्रोश इसलिए हो रहा था कि सुजान ने उसे बिना अपराध क्यों ठुकराया ? यद्यपि माँ कुछ कह गयी तथापि सुजान को भी तो सोचना चाहिए कि क्या माँ जानती थी कि यही सुजान है ? सुजान ने अपना परिचय ही कहाँ दिया ? फिर माँ से भूल हुई, वे पुराने विचारों की हैं आदि आदि ।

कुछ दूर तक यही सोचता हुआ आनन्द पैदल ही चला और बाहर जाकर बग्घी में बैठ गया । विचार तभी जगते हैं जब मानव मन का झंझावात सीमा को छूकर शान्त हो जाता है । बग्घी पर बैठते ही आनन्द के हृदय में श्रद्धा का उदय हुआ । सोचने लगा—आखिर सुजान बेचारी ही क्या करे ? मान-प्रतिष्ठा तो दूर उसे शान्त जीवन बिताना भी दुष्कर हो रहा है । किसी भले घर में घुसने का उसे अधिकार मिलना तो दूर रहा, लोग उसे यों ही कोसा करते हैं । जब वह नाचती है तो उस पर बहुमूल्य पुरस्कारों की वर्षा होती है और जब वह समाज से केवल जीने का अर्थ पूछती है तो गालियों की बौछार । यह कैसा न्याय है ? उसके शरीर से सभी प्यार करना चाहते हैं लेकिन उसकी आत्मा, हृदय और मन सबकी पहचान से परे है । वह निश्चय कर बैठा—'सुजान ! घबराओ नहीं । आनन्द में अभी भी वह शक्ति है कि तुम्हें बचा ले । अभी तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ा है ।' उसने मन ही मन निश्चय किया कि सुजान को उसका सामाजिक अधिकार दिलाकर रहेगा । यह सोचते ही उसका मन अदम्य साहस और आशा से भर गया । उसने तत्काल चालक को सुजान के भवन की ओर चलने का आदेश दिया । बग्घी मुड़ गयी और तीव्रगति से भागती हुई सुजान की हवेली के सामने रुकी । एक बग्घी अभी आई ही हुई थी सुजान घर आ चुकी है इससे आनन्द

आत्मसन्तोष मिला। गाड़ी से उतर कर रात के उस अँधेरे में जो
ों से जगमगा रहा था सुजान के कक्ष के सामने पहुँच वाहर ही रुक
ा। सुजान पर्यंक पर तकिया के सहारे वैठी थी और पास हेम वैठा
। लगता था वड़ी गुप्त वार्ता चल रही थी। आनन्द को चौखट पर
के देख निर्मला वोली—'आनन्द जी अन्दर जाइए, यहाँ कैसे रुक गए।'
निर्मला का स्वर सुनकर सुजान चौंकी। उसने द्वार की ओर देखा
आनन्द ! परन्तु वह कुछ नहीं वोली। इतने में हेम उठकर वोला—
'आनन्द जी ! आइए। आज ता आप के पदों में वड़ा दर्द दिखा।' कहते
हुए आनन्द को अन्दर ले जाकर आसन पर वैठा दिया लेकिन सुजान न
उठी और न कुछ वोली ही। आनन्द को सुजान का यह उपेक्षा-भाव
वहुत खला, परन्तु उसने अपनी गम्भीरता तोड़ी नहीं। वह केवल सुजान
को देखता रहा। उसकी दृष्टि में सुजान अभी भी दिव्य लग रही थी।
उसे सौन्दर्य ही सौंदर्य दिखा। आनन्द समझ रहा था—सुजान नाराज
है, यह क्षणिक है। उसकी निष्ठा सुजान को अवश्य पिघला देगी ऐसा
उसका विश्वास था।

जैसे ही हेम कक्ष से वाहर गया आनन्द आगे वढ़कर सुजान के पास
आया। सुजान ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। इससे आनन्द के मन में
मधुर गुदगुदी हुई। उसने सुजान को ध्यान से देखा और धीरे से उसके
चरण स्पर्श किए। सुजान खीझकर वोली—'मुझे यह नाटक विल्कुल
पसन्द नहीं, कान खोलकर सुन लीजिए—मैं किसी की खेल नहीं। घर
आइए तो सभ्यता की सीमा में रहिए।' सुजान के शब्दों में वड़ी वेरुखी
थी, यों समझिए, ऐसी नीरसवाणी शायद ही वह कभी किसी से वोली
हो। आनन्द भी ऐसी वाणी सुनने का अभ्यासी नहीं था, परन्तु उसने
हँसकर कहा,—'सुजान ! तुम्हें खेल समझने वाले मेरे सामने पड़ जाएँ
तो मैं उनकी हत्या कर दूँ। रही सभ्यता, वह तो तुम्हारे और मेरे मध्य
वाधक नहीं। तुम डाट लो। मैं तो तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ। व
मुझे आज्ञा दो रात काफी वढ़ गई है। मैं फिर प्रातः आऊँगा।' सुजा

ने तेवर बदले—'आएँ चाहे जाएँ मुझे कुछ लेना-देना नहीं। हाँ, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ—मैं जहाँ हूँ वहीं पड़ी रहने दो। यदि दुबारा मुझे परेशान किया तो आत्म-हत्या कर लूँगी।' कहते-कहते सुजान मुँह ढाँप कर रो पड़ी। अब तक तो आनन्द ने धैर्य रखा था अब टूट गया। उसे पहले तो अपने से ही घृणा हुई फिर सुजान का रुदन! सहन करना आनन्द के लिए कठिन हो गया।

'ठीक है, तुमसे पहले आत्म-हत्या मुझे ही करनी है।' कहते हुए वह कक्ष से बाहर चला गया। सुजान का रुदन तो रुक गया किन्तु वह दौड़ कर न तो उसे बुला पाई और न कक्ष में बैठी रह सकी। उठी तो अवश्य परन्तु चक्कर खाकर फर्श पर गिर पड़ी।



आनन्द जैसे ही सुजान के भवन से चला गया। वैसे ही निर्मला रसोईघर से हेम के साथ शयन कक्ष में आई। सामने जो दृश्य दिखा, उससे दोनों आश्चर्य में पड़ गए। सुजान फर्श पर बेहोश पड़ी थी। उसका जूड़ा खुल गया था और केशराशि बिखरी हुई थी। आँचल हट जाने से सुजान विवस्त्रा-सी लग रही थी। निर्मला दौड़कर सुजान के पास आई। उसका आँचल ठीक किया। हेम जल ले आया। जल के स्पर्श से सुजान में चेतना आई। वह वस्त्र संभालती हुई उठ बैठी। निर्मला उसे गोद में संभालना चाहती थी, परन्तु वह खड़ी हो गई। उसे कमजोरी-सी लग रही थी। अस्तु, सुजान पर्यंक की पाटी का सहारा लेकर तकिया संभालती हुई बैठ गई।

'निर्मल ! हेम ने भोजन कर लिया ?'

'अभी-अभी तो भोजन तैयार हुआ, मेरे यहाँ कक्ष में आते ही.....'

सुजान हँस पड़ी। 'निर्मल ! जा हेम को भोजन करा दे, तू भी खा ले। मुझे दूध ला दे मैं यहीं पी लूंगी। जा, जल्दी कर।'

'किन्तु मालकिन ! आप कुछ तो खा-लें। इतनी बड़ी रात बिना खाए-पिए कैसे कटेगी ?'

'निर्मल ! इतना बड़ा जीवन खा-पीकर ही तो कट गया। और बिना खाए एक रात की चिन्ता क्यों कर रही है ? तू जा, हेम हमारा अतिथि है, उसे खिला-पिला कर आसन दे दे।'

'स्वामिनी ! आप नहीं खायेंगी तो मैं भी व्रत कर जाऊँगी। आचार्य को खिला कर मैं भी निराहार ही सो जाऊँगी। उसका कण्ठ भर आया।

'निर्मल ! मेरी प्यारी बहिन ! हठ न करो। मेरा चित्त स्वस्थ नहीं

है। जा! मैं जो कह रही हूँ वही कर। कहकर सुजान उसे कक्ष से बाहर पहुँचा कर अपनी शैया के पास आई, बैठी नहीं, घड़ी-घड़ी कुछ सोचती रही।

वस्तुतः मानव-मन बड़ा संवेदनशील होता है। आनन्द के प्रति सुजान के अन्तर में जो आन्दोलन व्याप्त था, निर्मला के स्नेह से बहुत कुछ शान्त हो गया। सुजान की भांति निर्मला भी अनाथिनी ही थी। उसके पति ने उसे घर से निकाल दिया था जिसमें उस शुद्धात्मा को बड़ी ठेस लगी थी और तब से वह सुजान की सेविका, सखी या बहिन के रूप में सुख से जी रही है।

सुजान वहाँ से हटकर कक्ष के वातायन के समीप आई। आकाश स्वच्छ था। अन्धेरा पक्ष था, इसीलिए असंख्य नक्षत्र-दीप टिमटिमा रहे थे। कुछ समय तक सुजान उन्हें ही टकटकी लगाए देखती रही। उसके हृदय में शान्ति थी। अब उसे आनन्द की याद आई। बड़ी निराशा से वह कक्ष के बाहर निकला था। इसमें सदेह नहीं, सुजान ने आज उसके साथ अन्याय किया। ऐसी बेरुखी भी किस काम की? माना कि वेश्या का जीवन बिताते-बिताते वह निष्ठुर बन चुकी है फिर भी इसका उपयोग अपने ही आनन्द के लिए! अनुचित हुआ। सुजान ने सोचा—आनन्द मेरी आत्महत्या की बात सुनकर धैर्यहीन हो गया था। कैसी विडम्बना है? आखिर तुम्हारा अपना कहने वाला भी कोई नहीं, तो जो तुम्हारी उदासी पर विह्वल हो जाता हो, क्या उससे भी बढ़कर तुम्हारा कोई और है? उसे आनन्द की अन्तिम वाणी याद आ गई—'आत्महत्या तो मुझे ही करनी है' सुजान बिलख उठी। खूब जी भरकर रोने की इच्छा हुई लेकिन रोई नहीं। उसमें एक अद्भुत संकल्प जागा। वह आनन्द को मनाएगी। आनन्द ने आज उसे मनाने की ही चेष्टा की थी, वह रूठी रही परन्तु आनन्द ने उसका तिरस्कार नहीं किया वह शाही दरबार से सीधे यहाँ तक आया और हाय रे अभागिनी सुजान! तूने आनन्द को आँख भर देखा तक नहीं। सच है प्रेम की यही पहचान है। आनन्द ठीक

आसन ग्रहण करें। लास्य नृत्य ! वह भी सुजान नाचेगी और महाकालेश्वर के ऐतिहासिक मन्दिर में? स्वप्न तो बहुत बढ़िया है परन्तु·········।'

हेम ने बात काट दी—'सुजान ! संगीत क्षेत्र में 'परन्तु' शब्द को प्रश्रय नहीं दिया जाता। ईश्वर ने इस सृष्टि में संगीत के कण-कण को पिरोया है। वायु के संघात से तरु-पल्लवों में जो गति लहराती है, हरी-हरी दूर्वा जैसे-जैसे सिर हिलाती है, बाँस के छिद्र से जो ध्वनि निस्सरित होती है, वह सभी मिलकर नृत्य का अत्यन्त मोहक दृश्य उपस्थित करते हैं और मनुष्य इतना व्यस्त है कि उसे इस नैसर्गिक संगीत का आनन्द लेने का समय ही नहीं मिलता। सुजान तुम मेरा साथ दो। मैं सारे विश्व को चौंका दूंगा। मेरा विश्वास करो, मैं तुमसे यही दक्षिणा लूंगा, बस ?'

सुजान की आंखें खुली की खुली ही रह गईं। क्या····क्या, यह वही हेम है जिसे उस समय डांटना पड़ा था, तिरस्कृत करना पड़ा था। सुजान जैसे एक विकट पहेली में उलझ गई। हेम उसका गुरु न होता तो उस रात की बातों के लिए सुजान न जाने क्या-क्या कर डालती। आश्चर्य है, हेम सचमुच गुरु-पद के योग्य है। लगता है, हेम उस रात परीक्षा ले रहा था क्योंकि उसके पश्चात् तो उसने कभी ऐसा अवसर नहीं आने दिया। सुजान जैसे दुविधा में पड़ गई। वह क्या कहे ? उसके लिए तो जैसे कोई स्थान ही नहीं बचा जहां उसका एकाधिकार न दिख रहा हो। साधारण बात नहीं है, हेम उसे लास्य नृत्य में प्रवीण बना देगा और दक्षिणावर्त के गोपुर में उसे इस नृत्य प्रदर्शनहेतु आमंत्रित किया जाएगा। उसका पद मेनका उर्वशी से कम नहीं होगा। फिर वह वेश्या कहां रही। हेम उसे वेश्या से देवनर्तकी का पद देने पर तुला है। उसे मानना ही पड़ेगा।

सुजान का मन जाने क्या-क्या सोच रहा था। वह हेम को वहीं छोड़ कर अपने शयन कक्ष में आई। निर्मला विस्तर लगा कर पास की

चौकी पर लेटी हुई थी। सुजान ने उसे देखा वह सो गई थी। सुजान अपनी शैया पर लेटी तो, परन्तु नींद का नाम-निशान नहीं। विचारों की शृङ्खलाएँ मानस-पटल पर उभरने लगी। आनन्द! मुगल सम्राट् का परमप्रिय, सम्भ्रान्त ऐतिहासिक—पुरुष-कवि श्रेष्ठ। वह सुजान को अपनी आराध्या मानता है। उसका वश चले तो सुजान को किसी देवालय मे स्थापित कर दे। उसे सुजान के शरीर से नहीं वरन् हृदय से प्यार है। प्रेम! एक वेश्या, नर्तकी के लिए अनहोनी बात है। फिर भी आनन्द असंभव को सभव बनाने पर तुला है। लगता है सुजान के जीवन का यही चरम बिन्दु है।

कुछ देर बाद उसने करवट बदली। तभी मृदंग की मन्द-मन्द थाप कर्णपट पर टकराई। हेम लास्य-नृत्य को ताल-बद्ध करने की तैयारी में लगा है। आधी रात से ऊपर! और हेम की स्वर-साधना! कोई अचरज नहीं क्योंकि सगीत-ससार के दिन-रात मे अन्तर नहीं माना जाता। जो सूर्य अपने प्रभाव से जगत् को वशीभूत किए है और जिनके अस्त हो जाने पर सारा जीव जगत् निद्रा की गोद मे लिपट जाता है, वही सगीत के समक्ष पराजय स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि अधिकांश राग-रागनियाँ सूर्यास्त के पश्चात् ही अलापी जाती हैं। जैसे-जैसे रात गहराती है, वैसे-वैसे रागों की अनुरागता को माधुर्य का स्पर्श करने लगती है। सुजान के कानो मे जैसे अमृतबिन्दु टपकने लगे। लेटे-लेटे सोचने लगी। यह हेम है, मृदगाचार्य, रसिक हृदय और सुजान का साजिन्दा! अर्थात् बिना उसके संकेत के वह पग उठाने मे भी असमर्थ है। उसने कई तालों पर उसे नचाया और अब! अब तो वह असंभव को भी संभव करने पर लगा है। रात भर मृदग पर अभ्यास करेगा और दिन मे सदाशिव को भी पास बैठाएगा, फिर मुझे भी घुँघरू बाँधने ही पड़ेंगे। लास्य नृत्य! सुजान ने इस नृत्य की बड़ी चर्चा सुनी थी। भगवती पार्वती अपने प्राणपति महादेव को इसी नृत्य से रिझाती थी। यही नहीं, जब भी भोलानाथ अन्यमनस्क होते, पार्वती इसी नृत्य की मुद्राओं से उन्हें प्रसन्न करती थी।

पुराणों ने तो यहां तक वर्णन किया है कि जब शिवजी महाप्रलय के लिए तांडव प्रारम्भ कर देते थे, उस समय पार्वती के लास्य नृत्य पर ही उन नटराज के तांडव का विराम हो पाता था। बड़ा जादू है इस नृत्य में और यह हेम धुन का पक्का है। यह मुझे बिना सिखाए दम नहीं लेगा। सुजान, लास्य नृत्य की नर्तकी! एकमात्र नर्तकी!! उसका शरीर रोमांचित होने लगा। उसने पुनः करवट बदली। हेम मृदंग पर तालों को दुहराता रहा। सुजान ने आँखें मूंद लीं। स्वर का माधुर्य उसके कर्णपट पर टकराता रहा और वह सो गई।

सुजान की जब नींद खुली तो उसे बग्घी की घड़घड़ाहट सुनाई दे रही थी। वह समझ गई—निर्मला जा रही है। आज उसे आनन्द का समाचार मिल जाएगा। कल तो झटके-से निकल गए थे, आज निर्मला को देखते ही उल्टे पाँव आयेंगे। सुजान सोचने लगी वह भी लास्य नृत्य द्वारा अपने आनन्द को रिझाएगी। सुजान ने आज के प्रभात को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया और शैया त्याग दी।

वस्तुतः पुरुष के बिना नारी अधूरी है, सुजान अनुभव कर रही थी। उसने अपनी इस अल्पावस्था में ही बहुत अनुभव कर लिए थे। आज वह नवीन कल्पनाओं में खो-खो जाती थी। आज वह लास्य नृत्य का अभ्यास प्रारम्भ करेगी। आनन्द सामने होगा। यह कल्पना सुजान के अंग-अंग में अद्भुत स्फूर्ति का संचार कर रही थी। स्नान-ध्यान के पश्चात् कुछ साधारण-सा जलपान करके सुजान अपने संगीत कक्ष में पहुँची।

सदाशिव सुजान के निकट आकर बोला—'बेटी! यह हेम तुझे विश्व की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी बनाकर ही दम लेगा। वह तुम्हें लास्य नृत्य सिखाएगा, सुना है।' 'बाबा! हेम की माया हेम ही जाने। यह संगीत-नृत्य क्षेत्र ही आप सब का है। मुझे तो हेम जैसे नचाएगा, नाचूँगी।' हेम मृदंग के मुख पर आटा लगाकर ताल-मेल बैठा रहा था। सुजान का अन्तिम वाक्य उसके कानों में मधुरस के समान टपका। उसका मस्तक

ऊँचा हो गया। सुजान ने समीप जाकर श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और चुपचाप खड़ी हो गई।

हेम ने सुजान को दो-चार सामान्य बातें समझाकर नृत्य के लिए इशारा किया। सुजान ने साड़ी का आँचल कटि में कसकर बाँधा। हेम ने सदाशिव की सारंगी से साज मिलाया। सुजान के चरण थिरकने लगे। थोड़ी देर तक ताल-लय-सुर चला, परन्तु सुजान आगे साथ न दे सकी। हेम समझ गया। उसने मृदंग एक किनारे रखी और सदाशिव को सारंगी साधे रहने का संकेत देकर सुजान को साथ-साथ नाचने को कहा। सुजान उसके संकेतों का अनुसरण करने लगी। हेम नृत्य-कला में परम प्रवीण था, यह तो सुजान को पूर्वविदित था ही क्योंकि इसी वर्ष में हेम के साथ उसने गणेश-ताल, मयूर-ताल तथा अन्य तालों पर नृत्य सीखा था, परन्तु हेम लास्य-नृत्य में भी इतना कुशल होगा, यह उसे अविदित था। जब सुजान खड़ी हुई देख रही थी, उस समय हेम सारंगी की लय पर इतनी मनमोहक रीति से परिक्रमा करता हुआ नाचा कि नृत्यकला पारखी सुजान लट्टू हो गई। अपना भाग्य सराहा। किसी ज्योतिषी ने उसका हाथ देखकर भविष्यवाणी की थी कि एक कलाकार उसे विश्व की श्रेष्ठ विभूति बनाएगा, लगता है ज्योतिषी की वाणी सत्य निकली। वह कलाकार हेम के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? हेम पूरे नृत्य-प्रदर्शन के बाद पसीने-पसीने हो गया तो सुजान उस पर हवा करने लगी। अब तो हेम के हर्ष का ठिकाना न था। वह न जाने क्या-क्या मधुर-मधुर कुछ सोचता रहा।

थोड़ी देर के बाद हेम ने पुनः सदाशिव को उसी पूर्व राग पर सारंगी साधने का संकेत दिया और सारंगी के तार जैसे ही मुखरित हुए, हेम ने सुजान को नाचने का संकेत किया। सुजान यद्यपि नृत्य-कला की बारीकियाँ भली-भाँति समझती थी और चार-छः नृत्य तो उसने बिना सिखाए ही साध लिए थे तो भी लास्य नृत्य के इस पूर्वाभ्यास में उसे बार-बार हेम का सहारा लेना पड़ा लेकिन उसने बिल्कुल उसी प्रकार उतार

जैसा हेम ने बताया। सदाशिव की सारंगी ने भी अपना चमत्कार दिखलाया। हेम की ताल, सदाशिव की सारंगी की लय तथा सुजान की थिरकन तीनों मिलकर गजब ढा रही थीं। सुजान इस पूर्वाभ्यास में पूर्ण सफल रही। आज वह थकान का भी अनुभव नहीं कर रही थी। हेम की दृष्टि में वह सफलता की सीढ़ियां तेजी से लांघ रही थी। वह लगातार सुजान पर दृष्टि लगाए रहा, और सुजान उसी के संकेत पर नाचती रही। नृत्य के अन्तिम प्रदर्शन पर तो हेम मुग्ध हो गया। सुजान को दिल में बैठा लेना चाहा और आखिर भावावेश रोके न रुका जैसे ही सुजान रुकी वैसे ही हेम ने एक चुम्बन धीरे से ले लिया''''सुजान चौंक पड़ी। पहले उसने सदाशिव की ओर देखा तो वह सारंगी ठीक कर रहा था और द्वार की ओर दृष्टि जाते ही घबराई हुई निर्मला को देखा।

सुजान कुछ क्षणों के लिए स्तब्ध-सी हो गई। मारे लज्जा और क्रोध के मुंह भी न उठा सकी। हेम विजयी की भांति अपने स्थान पर बैठा था। उसे क्या पता—जिसको बहुत कुछ बनाने के लिये वह दृढ़ संकल्प हो रहा था, वह कुछ बनने के पूर्व, जो कुछ थी, उससे भी कहीं दूर जा चुकी थी। सुजान मुंह ढांपकर जी भर कर रो लेना चाहती थी वह देर तक खड़ी न रह सकी। धीरे-धीरे चली। द्वार पर निर्मला उदास खड़ी थी। सुजान ने जैसे उसे देखा ही नहीं। वह अपने शयनकक्ष में जाकर शैया पर गिर पड़ी। आज उसके हृदय को भयंकर ठेस लगी। आंसुओं का वेग रोके न रुका। वह बिलख उठी। निर्मला दबे पांव कक्ष में आयी। उसने अपने ही भवन में अपनी स्वामिनी को इस स्थिति में आज प्रथम बार देखा। धीरे-से सुजान के घुंघरू खोल कर एक ओर रख दिये और आंचल से सुजान का मुंह पोंछा। सुजान जोर से रो पड़ी। निर्मला भी रोने लगी। वह स्वयं की दृष्टि में ही पतिता लग रही थी। नृत्य के प्रति उसकी सहज आसक्ति उसे अपना ग्रास बना बैठी थी। निर्मला ने आंखें पोंछते हुए कहा—'बीबी जी ! आनन्द''''' सुजान कुछ जानना था

सुनना नहीं चाहती थी उसने निर्मला के मुख पर हाथ रख दिया और उसे बाहर जाने का संकेत किया। निर्मला बाहर निकल गयी।

सुजान पड़े-पड़े सोचती रही। लास्य नृत्य ! हेम ने उसे लास्य नृत्य सिखाने का संकल्प लिया है और इस नृत्य के पूर्वाभ्यास का आज प्रथम अनुभव ! *अन्तिम अभ्यास तक क्या होगा ?* भला, अब वह कौन-सा मुँह लेकर अपने आनन्द के सामने उपस्थित होगी। हेम ! उस पर तो जैसे वासना का उन्माद-सा चढ़ा है। पुरुषों को समझना भगवान् को भी समझने से कठिन है। बड़ी घृणा हुई सुजान को। उसका अन्तर घनी पीड़ा से कराह उठा, यद्यपि आँसू थम चुके थे तथापि मन में विद्रोही भाव उभर रहे थे। उसके सारे शरीर में विष व्याप्त हो रहा था। वह उठना ही चाहती थी कि हेम आ गया। सुजान तेज आवाज में बोली—'धिक्कार है उस विधाता को जिसने तुम्हें संगीत की ओर प्रेरित किया, धिक्कार है मुझ जैसी अभागिनी को जिसने तुम्हें अपना गुरु बनाया और तुम्हें.... तुम्हें.... मैं क्या कहूँ ?'

सुजान ! मुझसे अपराध हुआ और भावावेश में........'

'तुम जिसे आवेश समझते हो, वह तुम्हारा स्वभाव है। तुम इतने सस्ते हो, इसकी तो मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।' सुजान ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। हेम लज्जित था। 'जाओ हेम' सुजान ने जैसे बड़े इत्मीनान का अनुभव करते हुए कहा—'भूल मेरी थी, इसीलिए दण्ड भी मुझे ही मिला। मैं वेश्या भले हूँ किन्तु कम से कम तुम्हारे भोग की सामग्री नहीं। तुम मेरे गुरु ही रहते जो तुम्हारी चरण रज मस्तक से लगाती। परन्तु तुमने जो चाहा वह इतना....। अच्छा ! जाओ मैं लास्य सीख चुकी और तुम....'

'ऐसा न कहो सुजान। इतना बड़ा तिरस्कार मैं सह न पाऊँगा। तुमने एक ही दिन में ऐसा जटिल नृत्य आत्मसात कर लिया यही मेरे भावावेश का कारण बन गया।' हेम के स्वरों में आत्मस्वीकृति सहज पुट था, परन्तु इससे सुजान पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह बो

—'हेम मुझे भुलावा देने का प्रयत्न मत करो। देखो, मैं भी कोई बच्ची नहीं। मैंने भी कुछ जीवन जिया है। तुमने जो कुछ भी किया उसके पीछे तुम्हारी लम्बी योजना है। तुमने जो जाल बिछाया, उससे बचने के लिए मुझे पलायन का ही सहारा लेना पड़ेगा। मैं नहीं चाहती कि जिस शील-रक्षा के लिए आज तक मैं जूझती रही, सब कुछ गँवाकर मैंने जिसे बचाए रखा और जिसको मैं आज तक संजोये रही, तुम उसका सहज ही अपहरण करके मेरा अस्तित्व मिटा दो। तुम्हारी संगीत-साधना तुम्हें मुबारक हो, भगवान् के लिए तुम मेरी आंखों के सामने से हट जाओ। कहीं ऐसा न हो....' सुजान में क्रोध के भाव स्पष्ट थे। हेम ने सुजान का यह रूप आज पहली बार देखा। नृत्य की मुद्राओं पर तो वह लट्टू था ही, सुजान की यह कोप-मुद्रा उसे कहीं अधिक लुभावनी लगी। हाय रे नारी! तेरे बचने का कोई उपाय नहीं। हास से भरा मुखमण्डल तो आकर्षक ही होना चाहिए। क्रोध से युक्त मुखमण्डल पर भी पुरुष की आसक्ति कम नहीं। लगता है, नारी होना ही अभिशाप है। उस पर सुन्दर होना तो एक विडम्बना ही। हेम वहीं फर्श पर बैठ गया।

सुजान! मुझे जी भर कर कोस लो, जो चाहे दण्ड दो मैं प्रतिवाद न करूँगा परन्तु इस प्रकार दुत्कारो मत। कहते-कहते हेम रो पड़ा। उसने आंसू पोंछ कर कहा—'सुजान! मैं अपनी संगीत-साधना की सौगन्ध खाकर कहता हूँ—अब कभी ऐसा न होगा।' कहते-कहते वह खूब रोने लगा। सुजान से यह दृश्य देखा न गया। उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता यही थी कि स्वयं तो जरा-जरा सी बात पर रो पड़ती थी, परन्तु किसी और के आंसू वह नहीं देख सकती थी, उसका दिल दहल जाता। आज भी वह विह्वल तो हो उठी परन्तु बोली कुछ नहीं। वह अपने को संभालते हुए कुछ बोलने वाली थी कि सदाशिव के साथ एक अल्पवयस्का युवती ने कक्ष में प्रवेश किया। हेम जैसे का तैसा बैठा रहा। सुजान ने आगे बढ़कर पूछा—'बाबा! यह कौन है?' और उसे बड़े गौर से देखने लगी। बड़ी आकर्षक मुद्रा थी उस बाला की। कर्णपट तक खिचे हुए

नेत्र, शुक नासिका, लोल कपोल, बिम्बाफल से रँगे अधर, नागिन-सी छितराई लटें अलकों की छवि तथा गठीला शरीर सब मिलाकर यह रूपवती लग रही थी। 'बेटी !' सदाशिव ने उसकी ओर संकेत करके कहा —'यही लीला जिस पर रगीले शाह परम कृपालु हैं। इन्हें कलकत्ता के एक फिरंगी नर्तक ने अंग्रेजी नृत्य कला मे प्रवीण कर दिया है अब शाहंशाह की इच्छा है कि सुजान की देख-रेख मे इन्हें भारतीय नृत्यकला में दक्ष किया जाए।'

ये बातें हो रही थी कि हेम चुपचाप कक्ष के बाहर उठ कर चला गया। 'आओ बहिन ! मेरे पास बैठो।' कहते हुए सुजान ने लीला को बडे प्यार से बैठाया। 'बाबा ! तुम खडे क्यो हो, चौकी पर बैठो न।' सुजान मुस्करा रही थी और लीला उसे ध्यान से देख रही थी। उसने सुना था—सुजान उत्तर भारत की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी है। उसके नृत्य पर देश-देशान्तर के राजा और राजकुमार रीझे हुए थे। अवध के नवाब सुजान की एक झलक पाने के लिए आतुर रहते थे। सुजान की ख्याति बगाल तक फैली हुई थी। सचमुच, जैसा सुना था वैसा ही पाया। लीला उसके पास शैया पर ही बैठी थी। सुजान ने पूछा—'बहन ! तुम अंग्रेजी नृत्य सीखकर भी हिन्दुस्तान का देहाती नृत्य देखकर क्या करोगी ?'

'सखी ! अंग्रेजी नृत्य मे बडी भद्दैती होती है। मेरा सौभाग्य है जो आप जैसी देवी के दर्शन हुए। अब मुझे विश्वास हो रहा है कि मेरा जीवन भी सफल हो जाएगा।' 'परन्तु तुम रह कहाँ रही हो ?' सुजान ने पूछा।

'शाही हरम मे।' लीला ने उत्तर दिया।

शाही हरम सुनकर सुजान चौंक पड़ी। वह हरम का अर्थ भलीभाँति जानती थी। यह हरम ही रगीले शाह की रगरेलियों का पक्का अड्डा था। जहाँ प्रति रात्रि एक न एक ललना रगीले शाह की कामाग्नि की आहुति बनती थी। उसने लीला को एक बार फिर ध्यान से देखा, सब समझ गई। उसे लीला पर बड़ी दया आई। ऐसा अबोध सौन्दर्य, ऐसी

मधुर रूप राशि ! लगता है, सब कुछ शाह पर अर्पित हो चुका। सुजान का मन एक असह्य पीड़ा से कराह उठा। उसे लगा लीला सब कुछ गँवा-कर हाथ पसार रही है। उस सुजान से जो बहुत कुछ प्राप्त करने के लिए अब तक संघर्ष करती रही। उसे लीला की स्थिति समझते देर नहीं लगी। कहाँ कलकत्ता ? कहाँ फिरंगियों का नाचघर ! और कहाँ अब किले की प्राचीरों की गोद में सोया हुआ रंगीले शाह का हरम। विलास का अड्डा। लीला में सौन्दर्य है, अल्पावस्था और नवयौवन का आभार है। शाह को चाहिए भी यही सब ! इसीलिए जो कुछ कमी है उसकी पूर्ति हेतु सुजान का सहयोग आवश्यक है। सुजान के मन में एक साथ घृणा, ईर्ष्या, दया और करुणा के भाव जागे। उसने सबको दबाते हुए कहा—"बाबा ! हेम अभी-अभी बाहर गया है। वह रात का थका है। उसे विश्राम करने दीजिए। कल से लीला का नृत्याभ्यास यहीं चलेगा। उसने हँसकर लीला को गले लगाया और निर्मला को पुकारा। निर्मला दौड़ कर कक्ष में आयी। 'अरे' ! सुजान उसे देखते ही चौंक पड़ी। निर्मला की आँखें रोते-रोते सूज गयी थीं। उसके मुखमण्डल का सहज हास लुप्त हो चुका था। भर्राए हुए गले से स्वर फूटे—'मालकिन ! किसलिए बुलाया ?'

सुजान बोली तो कुछ नहीं, कुछ क्षण केवल उसे देखती ही रही। वह शैया से उठकर वातायन की ओर चली। निर्मला भी साथ-साथ गयी।

'निर्मल ! तू आनन्द के भवन हो आई ?'

'कब की, मालकिन ! मैं आपसे वहाँ का समाचार ही तो बताने जा रही थी कि आप·····' आगे वह बोल नहीं सकी।

'निर्मल ! तो तूने अभी तक नहीं बताया और यदि मैं न पूछती तो शायद तुम बताती ही नहीं।'

'ऐसी बात नहीं बीबी जी !' निर्मला सहमती हुई बोली।

'तो बोल न, क्या बात हुई और तू इस प्रकार आंसुओं से मुँह क्यों धोये जा रही है ?'

'स्वामिनी ! आनन्द सन्निपात ज्वर में तड़प रहे हैं और बार-बार आपका नाम लेकर।'

'निर्मला। क्या तूने अपनी आँखों से देखा ? कल तो वे यहाँ से सकुशल गए थे। रात भर में ही सन्निपात। असंभव है।' सुजान डाँटते हुए बोली। उसे निर्मला की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था।

'मालकिन ! सभी वैद्य-हकीम उनके भवन पर मौजूद हैं। ग्रामणों और नागरिकों की वहाँ भीड़ लगी है। आज संध्या के पूर्व शाहंशाह भी उन्हें देखने के लिए आएँगे। मुझे देखते ही उनकी माँ ने इशारे से पास बुलाया और रोती हुई....।' निर्मला रोने लगी। शब्द अटक गए।

'निर्मला ! तू तो मेरे सुख-दुःख के साथ लगी है परन्तु इतनी बड़ी बात जानकर भी तू अभी तक चुप रही। अच्छा किया। जब सभी सता रहे हैं तो तू ही क्यों पीछे रहे। क्या आनन्द की माता जी ने तुझसे कुछ कहा भी ?' सुजान हताश होकर बोली। उसे लगा उसका साहस टूट रहा है। उसके चरणों में कम्पन हो रहा था।

'स्वामिनी ! आनन्द की माँ बहुत दुखी होकर कहने लगीं निर्मला एक बार अपनी मालकिन को यहाँ ले आओ ! मैं उस देवी के चरणों में सिर रखकर क्षमा माँगूँगी। आनन्द ने आपके बारे में अपनी माँ को सब कुछ स्पष्ट बता दिया है और इस समय तो वे केवल आपके नाम का ही उच्चारण कर रहे हैं।' निर्मला एक साँस में बोलती चली गई। सुजान के भाव बदले। वह धीरे से बोली—'निर्मल ! तू आनन्द के पास गई थी ?' 'हाँ मालकिन ! मैं दूर खड़ी थी। उन्होंने देखा भी, परन्तु लगता है, वे मुझे पहचान नहीं सके। मुझसे भी उनका कष्ट देखा नहीं गया' कहते ही निर्मला पुनः रुआँसी हो गई।

सुजान निर्मला को समझाकर कमरे में आई और सशंकित हो बोली, 'बाबा ! आज लीला को ले जाइए, कल इसी समय....' कहते हुए वह शयन कक्ष से बाहर हो गयी। भवन के बाहर द्वार पर पहले रमजान ही मिल गया। उसे बग्घी तैयार करने का आदेश देकर सुजान भवन में

आयी। वस्त्र वदले। निर्मला समझ गयी कि कहाँ की तैयारी है। जैसे ही सुजान आँगन में आयी निर्मला भी साथ चलने के लिए तैयार थी। 'निर्मल ! मुझे अकेली ही जाने दो। संगीत कक्ष में हेम वैठा है उसे भोजनादि करा देना।' कहते हुए सुजान तीव्र गति से वाहर निकलकर वग्घी में वैठ गयी।

वस्तुत: सुजान वड़ी ही गम्भीर प्रकृति की थी। लोग कहते हैं कि वेश्या हृदयहीना होती हैं उनका मर्म कुण्ठित हो जाता है किन्तु सुजान ऐसी नहीं थी। उसके अन्तर में ममता, दया, करुणा के भावानुभाव हिलोरें लिया करते थे।

रमजान तेजी से वग्घी वढ़ाए जा रहा था और अन्दर वैठी सुजान गुम-सुम-सी वनी हुई वग्घी के पर्दे पर खिची हुई धारियाँ देख रही थी। घोड़ों के ठिठकने का आभास मिला तो सुजान ने पर्दा हटाया। वह आनन्द की हवेली के द्वार पर थी। विना किसी प्रतीक्षा के वह वग्घी से उतरी, आगे-पीछे देखे विना वह भवन में घुस गयी। आँगन में न जाकर वह उसी अतिथिशाला की ओर मुड़ी जहाँ से विरक्त होकर वह पिछली वार भागी थी।

यह कक्ष उसे वड़ा मोहक लगता था। विशेष सजावट नहीं थी तो भी इसकी वनावट ऐसी थी कि सहज ही मन मुग्ध हो जाता था। जैसे सुजान की दृष्टि आंगन की दीवार पर पड़ी तो उस पर कलात्मक ढंग से गीतोपदेश दिखाई दिया....

'अनन्यश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां सततयुक्तानां
योग क्षेमं वहाम्यहम्॥'

इतने में आनन्द की माँ गोमती देवी सामने ही दिखीं। सुजान ने लपक कर उनके चरण की ओर झुकना ही चाहा कि गोमती ने सुजान को उठा कर गले लगा लिया और फफक पड़ी, हिचकी वंध गयी उस वृद्धात्मा की करुणा ने अब तक स्थिर सुजान को डिगा दिया। सुजान की आँखों से

अश्रुधारा बह चली। गोमती ने अपने आंचल से उसकी आँखें पोंछते हुए कहा—'लगता है तुमने मुझे माफ कर दिया।' 'माँ' कहती हुई सुजान पुनः गोमती के अंक से लिपट गयी। 'आओ बेटी ! आनन्द तुम्हारी बाट जोहते-जोहते सो गया है।' सुजान गोमती के पीछे-पीछे मंत्र-मुग्धा-सी चलने लगी। कितना विशाल हृदय होता है माँ का ! सच है, यह माँ ही है जो संसार को मिटने से रोक लेती है, निस्सन्देह यह माँ ही है जो बुझते हुए दीप को प्रकाशित कर देती है। धन्य है माँ, यही सोचती-विचारती सुजान आँगन पार करके आनन्द के कक्ष में पहुँची। विशाल कक्ष ! ताखों पर ग्रंथ रखे हुए। सुजान सीधे आनन्द के शैया के समीप पहुँची। आनन्द बेखबर सो रहा था। उसका दाहिना हाथ चादर के बाहर था। सुजान ने उसे चादर के अन्दर कर दिया और धीरे से आनन्द के मस्तक पर हाथ रखा। ज्वर का वेग शान्त था फिर भी मस्तक मे उष्णता थी। सुजान नीचे ही बैठ गयी। गोमती ने आसन लेने के लिए कहा किन्तु वह नीचे ही बैठी रही।

जीवन मे आज प्रथम बार सुजान का एक नूतन अनुभव हो रहा था। उसे लगा कि वह अपनी ससुराल में है। गोमती दूसरे कक्ष मे किसी काम से चली गई थी। सुजान आनन्द के कक्ष मे अकेली ही थी। उसने उठकर आनन्द के चरणों मे सिर रख दिया। बड़ी सुखद अनुभूति जागी और सुजान के नेत्र अपने आप मुँद गए। अन्तर के वीणा की तार बज उठे—'आनन्द ! मेरे जन्म-जन्म के साथी, मैं तुम्हारे चरणो की छाया मे सुख से बैठी हूँ।'

सुजान का मन कमल की भाँति खिल गया। वह पुनः अपने स्थान पर बैठकर आनंद का मुख कमल देखती रही। सुजान शैया की पाटी पर सिर रखे आनन्दमग्ना हो रही थी। आज उसे जीवन की सफलता का आभास हो रहा था।

आयी। वस्त्र बदले। निर्मला समझ गयी कि कहाँ की तैयारी है। जैसे ही सुजान आँगन में आयी निर्मला भी साथ चलने के लिए तैयार थी। 'निर्मल ! मुझे अकेली ही जाने दो। संगीत कक्ष में हेम बैठा है उसे भोजनादि करा देना।' कहते हुए सुजान तीव्र गति से बाहर निकलकर बग्घी में बैठ गयी।

वस्तुत: सुजान बड़ी ही गम्भीर प्रकृति की थी। लोग कहते हैं कि वेश्या हृदयहीना होती हैं उनका मर्म कुण्ठित हो जाता है किन्तु सुजान ऐसी नहीं थी। उसके अन्तर में ममता, दया, करुणा के भावानुभाव हिलोरें लिया करते थे।

रमजान तेजी से बग्घी बढ़ाए जा रहा था और अन्दर बैठी सुजान गुम-सुम-सी बनी हुई बग्घी के पर्दे पर खिची हुई धारियाँ देख रही थी। घोड़ों के ठिठकने का आभास मिला तो सुजान ने पर्दा हटाया। वह आनन्द की हवेली के द्वार पर थी। बिना किसी प्रतीक्षा के वह बग्घी से उतरी, आगे-पीछे देखे बिना वह भवन में घुस गयी। आँगन में न जाकर वह उसी अतिथिशाला की ओर मुड़ी जहाँ से विरक्त होकर वह पिछली बार भागी थी।

यह कक्ष उसे बड़ा मोहक लगता था। विशेष सजावट नहीं थी तो भी इसकी बनावट ऐसी थी कि सहज ही मन मुग्ध हो जाता था। जैसे सुजान की दृष्टि आँगन की दीवार पर पड़ी तो उस पर कलात्मक ढंग से गीतोपदेश दिखाई दिया....

'अनन्यश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां सततयुक्तानां
योग क्षेमं वहाम्यहम् ।।'

इतने में आनन्द की माँ गोमती देवी सामने ही दिखीं। सुजान ने लपक कर उनके चरण की ओर झुकना ही चाहा कि गोमती ने सुजान को उठा कर गले लगा लिया और फफक पड़ी, हिचकी बंध गयी उस वृद्धात्मा की करुणा ने अब तक स्थिर सुजान को डिगा दिया। सुजान की आँखों से

अश्रुधारा बह चली। गोमती ने अपने आँचल से उसकी आँखें पोंछते हुए कहा—'लगता है तुमने मुझे माफ कर दिया।' 'माँ' कहती हुई सुजान पुनः गोमती के अंक से लिपट गयी। 'आओ बेटी! आनन्द तुम्हारी बाट जोहते-जोहते सो गया है।' सुजान गोमती के पीछे-पीछे *मंत्र-मुग्धा-सी* चलने लगी। कितना विशाल हृदय होता है माँ का! सच है, यह माँ ही है जो संसार को मिटने से रोक लेती है, निस्सन्देह यह माँ ही है जो बुझते हुए दीप को प्रकाशित कर देती है। धन्य है माँ, यही सोचती-विचारती सुजान आँगन पार करके आनन्द के कक्ष में पहुँची। विशाल कक्ष! *ताखों पर ग्रंथ रखे हुए। सुजान सीधे आनन्द के शैया के समीप* पहुँची। आनन्द बेखबर सो रहा था। उसका दाहिना हाथ चादर के बाहर था। सुजान ने उसे चादर के अन्दर कर दिया और धीरे से आनन्द के मस्तक पर हाथ रखा। ज्वर का वेग शान्त था फिर भी मस्तक में उष्णता थी। सुजान नीचे ही बैठ गयी। गोमती ने आसन लेने के लिए कहा किन्तु वह नीचे ही बैठी रही।

जीवन में आज प्रथम बार सुजान का एक नूतन अनुभव हो रहा था। उसे लगा कि वह अपनी ससुराल में है। गोमती दूसरे कक्ष में किसी काम से चली गई थी। सुजान आनन्द के कक्ष में अकेली ही थी। उसने उठकर आनन्द के चरणों में सिर रख दिया। बड़ी सुखद अनुभूति जागी और सुजान के नेत्र अपने आप मुँद गए। अन्तर के वीणा की तार बज उठे—'आनन्द! मेरे जन्म-जन्म के साथी, मैं तुम्हारे चरणों की छाया में सुख से बैठी हूँ।'

सुजान का मन कमल की भाँति खिल गया। वह पुनः अपने स्थान पर बैठकर आनद का मुख कमल देखती रही। सुजान शैया की पाटी से सिर रखे आनन्दमग्ना हो रही थी। आज उसे जीवन की सफलता का आभास हो रहा था।

'सुजान बेटी !' गोमती ने अन्तःकक्ष से पुकारा और 'आई माँ' कह कर सुजान अन्दर चली गयी। आनन्द के पास बहादुर सिंह बैठ गया। गोमती भोजन कक्ष में थीं। सुजान सीधे कक्ष के अन्दर न जाकर देहलीज के बाहर खड़ी हो गई। गोमती ने उसे देखते ही बड़े दुलार से कहा—'आओ, अन्दर आ जाओ। बाहर क्यों खड़ी हो अपनी वृद्धा माँ का कुछ हाथ बँटाओ।'

'माँ ! आपकी पवित्र रसोई में मैं ? अशुद्ध हो जाएगी, मुझे आदेश दो, मैं बाहर से ही आपकी·····' सुजान पूरा वाक्य बोल भी नहीं पाई थी कि गोमती चौके से बाहर आकर उसका दायाँ हाथ थामे उसे अन्दर ले गई और जिस पीढ़े पर स्वयं बैठकर रसोई बना रही थीं उस पर सुजान को बैठा दिया। सुजान भौचक्की-सी गोमती को निहारती रह गई। संकेत पाकर उसने पास रखे जल-कलश से हाथ-पांव धोया और कलछी लेकर शाक चलाने लगी। आज उसे लगा जैसे उसका शुद्धीकरण हो गया हा। वह जानती थी—आनन्द का परिवार परमवैष्णव परिवार है और छुआछूत का बोलबाला है, इसीलिए सहसा उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। गोमती ने सुजान के सिर से खिसकते हुए आँचल को ठीक करते हुए कहना प्रारम्भ किया—'बेटी ! तुम क्या हो, मुझसे आनन्द ने सब कुछ बता दिया। तुम्हारा खान-पान, रहन-सहन, कथा-वार्ता-ज्ञान सब सुनकर मन में बड़ी श्रद्धा हुई। आज तो तुम्हारे हाथ का पका भोजन पाकर धन्य होऊँगी।' गोमती के मुख से निकलते हुए शब्द सुजान के कानों में अमृत-बूँद की भाँति टपक रहे थे। इतने बड़े सम्मान के तो वह किसी प्रकार योग्य नहीं थी,

परन्तु क्या करे ! माँ से तो कुछ कहना भी कठिन है। जो सुजान महफिल में नाचकर सबका मन बहलाया करती थी वही आज इस परमसाध्वी देवी की श्रद्धा का पात्र बनी हुई थी, कौन विश्वास करे ? सुजान स्वयं जैसे स्वप्न देख रही थी। सचमुच, कभी-कभी कुछ क्षणों के लिए सत्य में भी धोखा हो जाता है। कोई भी बाहरी यदि इस समय आ जाता तो सास-बहू ही समझता। शाक पक चुका था, सुजान ने उसे उतारा और चावल धोकर चढ़ाया। लकड़ी ठीक से जल नहीं रही थी। सुजान ने फूंक मारकर उसे प्रज्वलित किया। धुआँ आँखों में भर गया पर सुजान इस समय इतनी प्रफुल्लित हो रही थी कि उसे धुएँ की कड़ुआहट का भी आभास नहीं हो रहा था। गोमती भी सुजान के सामने एक चौकी पर बैठी सुजान की ओर ध्यान से देख रही थीं। उन्हें बड़ा अच्छा लग रहा था।

इतने में दरवाजे पर आकर बहादुर सिंह बोला—'माँ जी ! आनन्द जग गये हैं और पानी माँग रहे हैं।' बहादुर सिंह इतना कहकर पुनः लौट पड़ा। गोमती ने सुजान से कहा—'बेटी ! उधर, उस पात्र में गर्म-जल है, अब ठण्डा हो गया होगा। तुम ले जाकर उसे दवा के साथ दे आओ। मैं तब तक चावल देख लूंगी।' सुजान को माँ की यह आज्ञा अटपटी लगी। यद्यपि इच्छा उसकी भी नहीं थी तथापि अपने भावों को दबाकर बोली—'माँ ! अच्छा होता, आप ही उन्हें दवा खिला देतीं। माँ के हाथ से औषधि अमृत''''।' इतना ही बोल पाई थी कि गोमती ने प्रतिवाद किया—'बेटी ! दोपहर में इसी औषधि के लिए पूरा महाभारत मचा। बड़ी कठिनाई से उसके एक बाल-सखा ने यह औषधि उसके गले से उतारी। तभी से सोया है और ज्वर भी शान्त है। जा बेटी ! तू ही खिला आ।' गोमती ने उसे चौके से उठाकर ही दम ली। वह उठी हाथ धोया, जलपात्र और औषधि तो ले लिया, परन्तु चरण कक्ष की ओर बढ़ने में उत्साह नहीं दिखा रहे थे। हृदय की धड़कन बढ़ रही थी। ५

में कम्पन भी था, परन्तु उसने जलपात्र को बड़ी दृढ़ता से पकड़ रखा था। एक-एक पग ऐसे धर रही थी जैसे बर्फ पर चल रही हो।

आनन्द शैया पर बैठा था। उसका मुंह बाहर की ओर था। बहादुर सिंह बाहर निकल रहा था। पीछे से सुजान मन्द गति से शैया के पास आई। घर से चलते समय उसे अपनी करधनी उतारने का ध्यान न रहा, वह उसकी कमर में थी और प्रतीति तब हुई जब उसका घुंघरू बजा। आनन्द ने मुंह घुमाकर देखा—सुजान! आनन्द का मुख-मण्डल कमल की भांति खिल उठा। रोम-रोम में गुदगुदी होने लगी। ज्वर का वेग शान्त था, शरीर हल्का हो चुका था, मन स्वच्छ था उसने मोहक मुस्कान बिखेरते हुए सुजान का स्वागत किया। साथ ही पास आने का संकेत भी किया। सुजान लजा गई। आज आनन्द उसे बड़ा आकर्षक लग रहा था। मन-ही-मन गद्‌गद हो उठी किन्तु वह जहाँ की तहाँ खड़ी रही। तब आनंद यद्यपि दुर्बलता का अनुभव कर रहा था, उठने की शक्ति नहीं थी फिर भी पाटी पकड़ कर स्वयं ही उठना चाहा कि जलपात्र चौकी पर रखकर सुजान ने अपने हाथों से उसे पुनः शैया पर बिठा दिया। वह अपने को कृतकृत्य अनुभव कर रही थी। गृह-स्वामिनी की भांति उसने आनन्द को औषधि खिलाई, शैया पर लिटाकर चादर उढ़ाई और विश्राम करने का आदेश देकर जैसे ही पीछे मुड़ी—'सुजान' आनन्द के मुख से पहला शब्द सुना सुजान ने और घूम पड़ी—'तुम न आतीं तो मैं बच न ...।' लपक कर सुजान ने आनन्द के अधरों पर उँगलियां रख दीं। अत्यन्त सुखद स्पर्श था, आनन्द मारे हर्ष के उन्मत्त हो उठा।

'मैं कैसे न आती?' सुजान ने धीरे से कहा—'तुम बुलाओ और तुम्हारी सुजान न आए, यह कैसे संभव है? अच्छा! दवा खा चुके हो, अब शान्तिपूर्वक लेटे रहो। मैं रसोई में चावल चढ़ा कर आई हूँ, मां जी अकेले परेशान हो रही होंगी।' सुजान की वाणी में आत्मविश्वास तो था ही साथ ही बड़ा भारी अधिकार भरा था। इसी अधिकार को प्राप्त करने के लिए नारी सब कुछ अर्पित कर देती है और सुजान का सौभाग्य

देखिए कि उसे आज बिना याचना के ही प्राप्त हो गया। वह कक्ष से चलने ही वाली थी कि आनन्द ने उसकी साड़ी का एक छोर पकड़ लिया। मुड़कर सुजान ने देखा, मुस्कराई—'देखो, उतावली मत करो, अब तक मेरे मन की चली, अब तुम जो चाहोगे वही होगा। बस न! छोड़ो आँचल, माँ जी न जाने क्या सोचती होंगी।' आनन्द धीरे से बोला—'सुजान! अब मैं मर भी जाऊँ तो मुझे पछतावा नहीं होगा क्योंकि मेरे मन की मुराद पूरी हो गई।' सुजान उसकी ओर मोहक दृष्टि के देखती हुई कक्ष से बाहर हो गई। भगवान् जब देता है तो छप्पर फाड़ करके उँड़ेलता है, यही सोचकर आनन्द मन-ही-मन मुस्कराया। सुजान रसोई में! आनन्द के लिए यह अनहोनी खबर थी। उसकी माँ परम वैष्णव! स्पर्श दोष माँ के लिए बहुत बड़ा विधान था, आज माँ को क्या हो गया। सुजान उनकी रसोई में! गजब का जादू है सुजान के स्वभाव में। माँ रीझ गई होंगी। सुजान धन्य हो तुम युग-युग जिओ। यही सब उधेड़ता-बुनता आनन्द फिर सो गया।

सुजान ने रसोईघर मे पहुँचते ही हाथ-पाँव धोया और आग्रह के साथ स्वयं ही चावल उतार कर दाल चढाई। गोमती सुजान से बहुत प्रसन्न थीं। आनन्द से उन्होंने यह जाना था कि सुजान संस्कृत और पौराणिक गाथाओं में भी रुचि रखती है। अतः उन्होंने सुजान से कहा—'बेटी! तुमने तो भागवत पढ़ी होगी मुझे यह बताओ कि कृष्ण गोपियों और ग्वाल-बालों को अपनी लीला मे रिझाकर भी जब गोकुल से गए तो कभी भी लौटकर नही आये क्यों और यह भी बताओ कि जब नन्द के घर घी-दूध की नदियाँ बहती थीं तो वे अन्य ग्वालो के घर चोरी से मक्खन के लिए क्यों ललचाते थे? सुजान ने माँ का प्रश्न बड़े ध्यान से सुना और यह भी अनुमान लगाया कि उनकी शंका निर्मूल नहीं है। वह कुछ क्षण कुछ सोचती रही। उसने कई विद्वानों से भागवत एव अन्य पुराणों की कथाएँ सुन रखी थी परन्तु आज जो समस्या माँ ने उसके सामने सहज भाव में रख दी थी, उसका समाधान कहीं भी नहीं सुना

था। वह सोच में पड़ गई। उसने माँ की ओर देखा और धीरे से बोली —'माँ जी ! कृष्ण ब्रह्म थे, उनका अवतार भारतभूमि के लिए वरदान था। वे जानते थे जब तक कंस का एकाधिकार तथा निरंकुश शासन रहेगा, तब तक नन्द-गाँव, गोकुल, गोवर्धन तथा बरसाना के पिछड़े लोग पनप नहीं पाएँगे। माँ जी ! पुराणों का कथन है कि कंस की २०० रानियाँ थीं और वे प्रति-दिन दुग्ध कुण्ड में स्नान करती थीं जो इन गाँवों की गायों के दूध से भरा जाता था। स्नान के बाद वह दूध फेंक दिया जाता था और दूसरे दिन फिर भरा जाता था। यही मथुरा नरेश कंस की आज्ञा थी। कृष्ण इसका विरोध कर रहे थे। बालक का विरोध सुनता कौन ? इसलिए, उन्होंने इस युक्ति से काम लिया जिससे दूध का दुरुपयोग रुका और वही दूध-घी खा-पीकर यहाँ के लोग इतने बलिष्ठ हो गये कि मल्लयुद्ध में कंस को मुँह की खानी पड़ी। कृष्ण जाने के बाद इसलिए नहीं लौटे कि जिस मोह-जाल में पड़कर उन गाँवों के लोग काम-काज छोड़कर अकर्मण्य होते जा रहे थे, श्रीकृष्ण ने अपने हृदय पर पत्थर रख कर उन्हें उससे मुक्त कर दिया। यह उस महामना का त्याग-भाव था जिसने ब्रजवासियों का भविष्य उज्ज्वल बनाया। एक बात और है माँ जी कृष्ण जो कहना चाहते थे पहले उसे करके दिखा दिया करते थे।'
'वह कैसे बेटी ?' गोमती जिज्ञासु बन गयीं। 'माँ जी ! कृष्ण जीवन पर्यन्त स्वयं संघर्षों से जूझते रहे। वे मानवमात्र के कल्याण में लगे रहे। उन्होंने जो भी किया वह भारत के इतिहास में बेजोड़ है। सब कुछ करने के पश्चात् उन्होंने गीता के माध्यम से स्पष्ट किया। इसीलिए कहा गया है—

"गीता सुगीता कर्तव्या
किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ।"

सुजान का ध्यान चूल्हे पर चढ़ी दाल पर गया। वह लपक कर चूल्हे के सामने पहुँची। गोमती मन-ही-मन श्रद्धा से उसको निहारती रहीं।

मधुरस तैयार हुआ और लीला ने मुस्कान बिखेरते हुए रंगीलेशाह को पिलाया। शाह ने आनन्द का समाचार पूछा और समवेदना के दो-चार वाक्य कहकर दल के साथ विदा हो गए। बहादुर सिंह बग्घी तक पहुंचाने गया। गोमती की जान में जान आई। सुजान शाह के सामने नहीं पड़ी, उसने भी भगवान् को धन्यवाद दिया। शाह के जाने के बाद वह भी घर जाने को तैयार हुई परन्तु माँ के आँसुओं ने उसके पैरों में बेड़ी डाल दी। आज पहली बार सुजान ने माँ के साथ भोजन किया। आनन्द अभी नींद में था। उसे परहेज से रहना था। केवल गर्म दुग्धपान का ही विधान वैद्यों ने बताया था। गोमती की आँखें नींद से अलसाई हुई थीं। वे रात भर जागी थीं और दिन में भी लेट नहीं पाईं। नौकर-चाकरों के खा-पी लेने के पश्चात् वे अपनी शैया पर पड़ीं और सुजान ने चरण दबाना प्रारम्भ किया ही था कि वे सो गईं। चादर उढ़ाकर सुजान दुग्ध-पात्र लेकर आनन्द के कक्ष में पहुँची। आनन्द जाग गया था। सुजान के आते ही, जो दो सेवक वहाँ बैठे थे बाहर चले गए। सारा कक्ष अगर-धूप से महक रहा था। झाड़-फानूस प्रकाश में छवि बिखेर रहे थे। सुजान दूध का पात्र लिए खड़ी थी। आनन्द धीरे से उठ बैठा और सुजान से भी शैया पर बैठने का आग्रह किया। वह चौकी पर ही बैठना चाहती थी परन्तु आज जैसे वह अपने में नहीं थी। वह अपने रोम-रोम में आनन्द का अधिकार समझ रही थी। आनन्द प्यार भरे नेत्रों से सुजान की रूप-माधुरी का पान कर रहा था।'

'दूध पी लो।' सुजान बोली।

'दूध ? दूध तो कल से ही पी रहा हूँ। आज तुमने जो भोजन बनाया है उसी में से दो कौर खिला दो न !' वह विनती के स्वर में बोला।

'भोजन ? पता है वैद्य जी ने सख्त मनाही की है। यदि एक अन्न भी मुँह में गया तो जो ज्वर अभी छोड़कर गया है, पुनः लौट आएगा। समझे, यहाँ सुजान है, तुम्हारी मनमानी नहीं चलने पायेगी।' सुजान कृत्रिम निष्ठुरता से बोली। 'तो फिर यह मेरा दुर्भाग्य ही है, वर्षों से

जिसके हाथों का बना खाने को तरस रहा था और आज मेरी साधना लता पुष्पित हुई तो वैद्य-हकीम बाधक बन बैठे। मेरी अच्छी सुजान! एक ही कौर खिला दो न।' आनन्द गिड़गिड़ाने लगा। सुजान चक्कर में पड़ गई। उसने नारी हठ तो सुना था किन्तु पुरुष हठ का अनुभव आज ही किया। यद्यपि रसोई में दाल-चावल सब बना था परन्तु किसी रोगी की यह इच्छा पूरी करना लगभग विष दे देने के तुल्य था। सुजान यह नहीं कर पाएगी। अपने को सँभाल कर बोली—'देखो आनन्द हठ मत करो। तुम बच्चे नहीं हो और यदि मुझे अधिक विवश करोगे तो मैं बहादुर सिंह को साथ लेकर घर चली आऊँगी फिर तुम रसोई घर में जाकर स्वयं ही जो चाहना खा लेना।' आनन्द पर जैसे वज्रपात हो गया। सुजान चली जाएगी, यह आनन्द सहन नहीं कर पाएगा। हारे हुए सैनिक की भाँति कड़वी औषधि की तरह दूध पिया। सुजान जीत गई थी, बड़े उत्साह से उसका मुँह धुलाया और बोली—'अब विश्राम करो। मैं यहीं चौकी पर लेट जाऊँगी। किसी चीज की आवश्यकता पड़े तो आवाज देकर बुला लेना।' आनन्द ने सुजान के ये वाक्य जैसे सुने ही नहीं। उसने सुजान को चौकी पर से उठने नहीं दिया और दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—'सुजान! बस रात से लेटे-लेटे थक गया हूँ इसलिए....'

'इसलिए अब यमुना तट पर टहलने की इच्छा है क्या?' सुजान ठहाका मार कर हँस पड़ी। सारा कमरा हँसी से गूँज उठा। आनन्द को यह हास बड़ा ही रुचिकर लगा। सुजान मौन पीठ किये बैठी थी, आनन्द स्नेह विभोर होकर उसकी गोद में लुढ़क गया। सुजान चौंकी तो अवश्य लेकिन उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया। यह आनन्द को चिर सम्मान लगी। आनन्द आँखें मूँद उस अलौकिक सुख के अनुभव में लीन हो गया। सुजान की कोमल उँगलियाँ आनन्द के घुँघराले बालों में चल रही थीं। आनन्द ने आँखें खोलीं। सुजान कुछ सोच रही थी।

'क्या सोच रही हो?' आनन्द ने पूछ लिया।

'सोच रही हूँ, तुम जीते और मैं हार गई।' सुजान इतना ही बोल कर चुप हो गई। आनन्द ने जैसे स्वर्ग पा लिया था।

'इसे मैं अपनी जीत नहीं मानता सुजान! सच तो यह है कि यह तुम्हारे आत्म विश्वास की विजय है। देखो! मेरी मां पुराने विचारों की हैं और अपने चौके में किसी को भी प्रवेश नहीं करने देतीं। परन्तु आज तुम्हारे हाथ का बना हुआ भोजन पाकर वे तृप्ति का अनुभव कर रही हैं। यह साधारण बात नहीं। मैं जो चाहता था उसे तुमने कर दिखाया, यह मेरी तृप्ति है। इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं चाहिए सुजान! कुछ नहीं चाहिए।' आनन्द की आंखों में प्रेमाश्रु आ गए। सुजान ने स्नेह से देखा और आनन्द को वक्ष से लगा लिया। आनन्द बहुत साफ सुजान के हृदय की धड़कनें सुन रहा था। विचित्र संयोग था। वासना दूर खड़ी पछता रही थी और दो कामना रहित हृदय प्रेम-रस में डूब-उतरा रहे थे। सुजान का अन्तर भर आया। 'देखो! आनन्द मैं पूर्ण रूप से तुम्हारी हो चुकी हूँ, केवल तुम्हारी। इसीलिए कभी भी अपनी सुजान को ठुकराना मत, बस इतना याद रखना।' यह स्पष्ट आत्मसमर्पण था जिसके लिए वह कभी तैयार नहीं हुई। ग्वालियर नरेश आधा राज्य देने को तैयार थे, रंगीले शाह अपनी प्रधान बेगम बनाने की शपथें लेते थे परन्तु सुजान ने इसी प्रकार के अन्यान्य प्रलोभनों को त्याग दिया था परन्तु आज! आज तो वह स्वयं वाग्दत्ता बन गई। वह इस समय भाव विभोर थी। आनन्द तो स्वर्ग सुख का अनुभव कर रहा था। वह बोला—'प्रिये! और कुछ होने के पहले यह शरीर ही त्याग दूँगा। जो सुजान मेरे रोम-रोम में, सांस-सांस में बसी है, उसे तो परमात्मा भी मुझसे अलग नहीं कर सकते। सुजान! प्रेम की परिभाषा आसान है लेकिन निर्वाह कठिन। यह सब समझ-बूझकर ही मैंने इस प्रेम पन्थ पर चलने का संकल्प किया है।' आनन्द ने सुजान को अपने बाहुओं में जकड़ लिया। सुजान समझ गयी यहां धोखा नहीं है। जो भी है सत्य है इसीलिए सरल है और विश्वास-योग्य है।

कुछ समय तक यों इसी प्रकार प्रेमालाप चलता रहा। सुजान ने स्पष्ट देखा—आनन्द की प्रीति में कामना या वासना का रंचमात्र स्थान नहीं। वह इतनी मगन थी कि बेखटके आधी रात तक आनन्द की शैया पर लेटी रही। आनन्द ने कई पद सुनाये वह आनन्द-विभोर होती रही। उसे आनन्द की अनासक्ति पर आश्चर्य भी हो रहा था और गर्व भी। सचमुच, पुरुष वर्ग में यह वृत्ति अपवाद ही थी।

एक ही शैया पर, वह भी एक पुरुष के साथ ! सुजान के जीवन की यह पहली घटना थी। जैसे ही वह उठने की कोशिश करती आनन्द उसे फिर बैठा लेता। आखिर इसी तरह रात बीत गयी। ब्राह्म मुहूर्त में आनन्द को झपकी-सी आने लगी तो सुजान उसे सुलाकर तथा चादर उढ़ाकर बाहर आई।

अभी कोई उठा नहीं था। सुजान ने माँ को जगाया। माँ ने सुजान को गले लगाकर युग-युग जीने का आशीर्वाद दिया। कुछ समय तक सुजान माँ को कथा-वार्ता सुनाती रही और प्रभात के पूर्व ही स्नान-ध्यान सम्पन्न करके सुजान आनन्द के कक्ष में आई। आनन्द जगकर बैठा था। सुजान को देखकर मुस्कराया, वह भी मुस्करा दी। आगे बढ़कर सुजान ने आनन्द के मस्तक पर हाथ रखा तो ज्वर का नाम-निशान नहीं था। आनन्द दो ही दिन में दुर्बल हो गया था। वह शैया से उठा पर चल नहीं पाया। सुजान ने बहादुर सिंह को आवाज दी। बहादुर के कन्धे पर हाथ रखे आनन्द बाहर निकला। सुजान ने आनन्द का बिस्तर बदला। आज उसे यह कार्य इतना प्रिय लग रहा था कि वह इसी में तल्लीन रहना चाहती थी।

आनन्द के आते ही उसे गर्म दूध तथा औषधि पिलाकर सुजान कक्ष से बाहर जा रही थी कि बहादुर सिंह घबड़ाता हुआ पुनः कक्ष में घुसा—'सरकार ! शाहंशाह के सिपाही बग्घी लेकर आये हैं।'

'क्या बात है ? उनसे पूछो क्या चाहते हैं ?'

आनन्द रोबीली आवाज में बोला।

सुजान पुनः कक्ष में आ गई।

'सरकार सिपाहियों के प्रधान का कथन है कि शाहंशाह ने इसी समय सुजान को तलब किया है।' इतना कहते-कहते बहादुर घबरा-सा गया।

'तुम जाकर उनसे कह दो सुजान नहीं आएगी, किसी कीमत पर नहीं आयगी। समझे।' आनन्द को क्रोध आ रहा था, सुजान समझ गयी।

'जैसी आज्ञा सरकार!' कह कर बहादुर चलने ही वाला था कि सुजान बोल पड़ी—

'बहादुर! उनसे कह दो, सुजान तैयार होकर आ रही है।'

'सुजान! यह क्या कह रही हो? मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा।' आनन्द खीझ उठा था।

'आनन्द! तुम आराम करो। मैं रंगीलेशाह को भली-भांति जानती हूँ। उसे पता लग गया होगा कि मैं यहाँ हूँ तभी बुलवाया होगा। देखो! जलती आग में हाथ नहीं डालना चाहिए।'

'परन्तु सुजान यह तुम्हारा अपमान है।'

'हाँ आनन्द! यह अपमान तो है ही परन्तु यह भी सोचो कि बहुत बड़ा सम्मान पाने के लिए ऐसे अपमान सहन करने में कोई हानि नहीं।' सुजान निशंक बोली। 'नहीं सुजान! तुम रुको। मैं एक पत्र भेज कर शाह को समझा सकता हूँ।' आनन्द अड़ गया।

'ऐसा नहीं होगा, इसमें तुम्हारा अपमान होगा, जिसे मैं कदापि सहन नहीं कर सकती।' कहती हुई सुजान निकल गयी और माँ के चरण छू बग्घी में बैठ गयी। क्योंकि वह न जाने का परिणाम समझ रही थी। स्वयं को तो कोई बात नहीं—वह अपने आनन्द को किसी कष्ट में नहीं देखना चाहती थी खुद भले आजीवन कष्टों में पड़ी रहे।

आनन्द सुजान का जाना किंकर्तव्य विमूढ़-सा होकर देखता रहा।

सुजान लम्बे डग भरती हुई हवेली के विशाल प्राँगण को तीर की तरह पार कर गई। वह न कहीं रुकी और न किसी ओर देखा। इस समय उसने जो निश्चय कर रखा था उसका सीधा सम्बन्ध रंगीले शाह से था। इसीलिए जब वह मुख्य द्वार पर पहुँची और उसे बन्द देखा तो खीझ उठी। बहादुर सिंह ने अभिवादन किया—"मैं आपके साथ चलूँ, क्या ?" सुजान की त्योरी बदल गयी। उसे लगा जैसे द्वार का न खुला होना उसका अपमान है लेकिन दूसरे ही क्षण सुजान मुस्करा उठी—'ठाकुर ! मुझे अबला नारी ही समझ रहे हो ?'

'नहीं देवी जी !' बहादुर बड़े उत्साह से बोला—'बात यह है कि शाह से अभी मेरी काफी बातचीत हो चुकी है और उस वार्तालाप से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि शांहशाह आपके ऊपर बहुत क्रोधित हैं और आपको दण्डित करने का निर्णय ले चुके हैं इसलिए आपको अकेले जाना उचित नहीं।'

सुजान ने बूढ़े ठाकुर की गंभीर बातों का अर्थ लगाया। घृणा से मुँह बिचकाकर कहा—'ठाकुर ! इस समय न जा सकूँगी। मैं घर जाऊँगी।'

'जैसी इच्छा।' बहादुर सिंह बोला।

सुजान आँगन की ओर न जाकर अतिथि-कक्ष की ओर मुड़ी। उसके मानस-पटल से शाह के आदेश की आँधी उतर चुकी थी। इस समय उसका मन भाव लोक में विचरण कर रहा था। वह कक्ष के मध्य फर्श पर बिछे कालीन पर पलथी मार कर बैठ गई। उसकी कला-पारखी दृष्टि दीवाल पर अंकित चित्रों पर दौड़ने लगी। एक कलात्मक चित्र पर उसकी दृष्टि रुक गयी। यह अभिज्ञान शाकुन्तलम् की वह झाँकी थी जब

दुष्यन्त ने शकुन्तला को प्रथम बार आश्रम में देखा था। वल्कल से अध-ढके अल्हड़ यौवन का अद्भुत आकर्षण दुष्यन्त के हृदय में हाहाकार मचा रहा था। नीचे वह पंक्ति अंकित थी जो उस समय दुष्यन्त ने कही थी—

'इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।'

सुजान उससे तादात्म्य स्थिर कर बैठी। उसे रात का साहचर्य गुद-गुदाने लगा। स्मृतियां तो बड़ी मोहक होती हैं। यथार्थ से कहीं अधिक लुभावनी होती हैं। सुजान का रोम-रोम सिहर उठा। वह काफी देर तक उस चित्र को देखती रही। कलाकार ने चित्र को इतना सजीव रूप दे रखा था कि इसे देखते ही मन मुग्ध हो जाना नितान्त स्वाभाविक था। सुजान न जाने किन-किन विचारों में खोई रही—नारी और पुरुष यौवन और सौन्दर्य !! प्रणय और वासना !! क्या यह सब दुर्बलता के प्रतीक हैं। दुष्यन्त जैसे धर्मात्मा चन्द्रवंशी सम्राट् एक आश्रम कन्या पर रीझे और खो बैठे स्वयं को, अपनी सत्ता एवं गरिमा को। चित्रकार ने अपनी तूलिका के चमत्कार एवं आकर्षक रंगों के प्रदर्शन से जो दृश्य उरेहा था वह सामान्य, असामान्य दोनों प्रकार के दृश्यों को आन्दोलित करने में समर्थ था। सुजान अपने हृदय की गहराई से पूर्ण परिचित थी और अन्तःकरण पर उभरने वाले प्रभावों के प्रति पूर्णतया सतर्क भी थी। उसे इस बात पर गर्व था कि वह जो कुछ सोचती थी वही करती थी। अतः पश्चात्ताप का प्रश्न ही नहीं। उसका आनन्द उसका चिर सखा है। उसके अधर बुदबुदाए—'आनन्द ! मेरा अपना आनन्द।' उसने आनन्द को जैसे नयन पट में बन्द कर लिया। उसे विश्वास हो चला था कि आनन्द एकमात्र सुजान के हृदय का आनन्द है। सुजान भाव-विभोर तो थी ही, ऐसा रोमाञ्च हुआ कि नेत्रों से प्रेमाश्रु छलक आए तभी पीछे से आकर किसी ने अपनी हथेलियों से उसकी आंखें ढांप लीं। सुजान का शरीर सिहर उठा। कोई और नहीं आनन्द ही था।

'प्रिये ! मैंने बहादुर सिंह को शाह के पास भेज दिया है तुम निश्चिन्त होकर यहीं विश्राम करो ।' आनन्द ने सहज मुस्कान बिखेरते हुए उसके कपोल थपथपा दिए । बड़ा मधुर था वह स्पर्श । सुजान और समीप हो गई ।

'देखो, आनन्द ! प्रत्येक सुख के पीछे विषाद की छाया अदृश्य-सी चलती रहती है । बहादुर गया है, ठीक है परन्तु रंगीले शाह की आँखें तो सुजान को थिरकते देखने के लिए बेचैन होंगी । देखो, लौटकर बहादुर सिंह क्या आदेश लाता है ।' सुजान ने अपना सिर आनन्द की गोद में रख दिया ।

'सुजान ! हमारे मध्य में कोई शाह नहीं, इसे निश्चित समझो । विश्वास करो अब इन कोमल चरणों में घुँघुरू नहीं बँधेंगे ।' सुजान अनुराग से भर उठी उसने आनन्द के मुख को अपनी हथेलियों में छिपा लिया ।

'आनन्द ! इस दिन की प्रतीक्षा करते-करते तो मैं प्रायः थक चुकी थी । मैं निराश थी और इसी धुन में जीवन कट रहा था कि जब घुँघुरू पाँव से संबंध तोड़ेंगे तो सुजान भी कहीं अदृश्य हो जाएगी । किन्तु नहीं, भाग्य के पट खुलते हैं, चाहे देर से, चाहे सवेर से । आखिर मुझे मेरा इष्ट प्राप्त हो ही गया ।' कहती हुई सुजान उठ खड़ी हुई और आनन्द को साथ लिए कक्ष के अन्त:कक्ष में प्रवेश कर गई । आनन्द अब स्वस्थ था । वह जो कुछ अनुभव कर रहा था उसे उसके अतिरिक्त केवल सुजान ही समझ रही थी ।

अन्त:कक्ष में सुगन्धित अगर धूप की महक फैल रही थी । सुजान बेधड़क पर्यंक पर गिर पड़ी । आनन्द समीप खड़ा था । उसके पाँव जैसे काँप रहे थे । सुजान ने आनन्द का हाथ पकड़ बिठाना चाहा किन्तु वह बैठ गया सो बैठा ही रहा । सुजान हर समय कुछ न कुछ सोचा करती थी और अपने आप ही तर्क-वितर्कों में औचित्य ढूँढा करती थी । इस समय उसके मन में क्या-क्या भाव थे केवल वही समझ रही थी उसने

आनन्द को स्थिर से बैठे नहीं रहने दिया। उसने उसे आलिंगन में आबद्ध कर लिया। आनन्द चौंका। सुजान की केशराशि में उँगलियाँ डाले बुद-बुदाया—'सुजान ! क्या इतना ही पर्याप्त नहीं है ?'

'नहीं आनन्द ! हर राग की एक सीमा होती है और जब तक उस सीमा का स्पर्श न हो तब तक·····' कहते हुए सुजान ने आनन्द को पुनः बाहुपाश में बांध लिया 'मैं तुम्हारा आशय समझ रही हूँ आनन्द ! अब मैं लाचार हूँ। मैं जो भी चाहूँ, मुझे प्राप्त करने दो, आखिर तो विषपान करना ही पड़ेगा।' कहती हुई सुजान हँस पड़ी। आनन्द ने सुजान के अधरों पर उँगलियाँ रख दीं—'प्रिये ! तुम और विषपान ? असम्भव है।' कहकर आनन्द ने सुजान के चरणों पर सिर रख दिया—'देखो ! सुजान प्रेम को प्रभञ्जन नहीं उड़ा सकता और न परिस्थितियां ही कोई खिलवाड़ कर सकती हैं। मेरी जन्म-जन्मान्तर की साधनाएँ पूर्ण हो रही हैं। हमें अब कोई भी शक्ति अलग नहीं कर सकती।'

आनन्द सुजान को भली प्रकार समझता था। उसने सुजान को समर्पण अवश्य किया था लेकिन उसके शरीर की भूख उसे कभी नहीं रही। वह जाना ही चाहता था कि सुजान ने रोककर कहा—'आनन्द ! मुझे हर्ष है कि तुम इस परीक्षा में खरे उतरे। मैं बार-बार तुम्हें केवल इसलिए उकसाती रही कि तुम्हारे शरीर में विकार उत्पन्न हो—वासना तुम्हें निगल ले परन्तु तुमने मेरी आशा के अनुकूल आचरण किया। मैं समझ गई कि तुम्हीं मेरे एकमात्र पुरुष हो जो मुझे इस मझधार से भी उबार सकते हो। मेरी सारी चेष्टाएँ तुम्हें डिगाने के लिए थीं पर तुम जहाँ मेरी अपेक्षा करते रहे वहीं अपने को भी स्थिर रखा। मुझे तुम जैसे पुरुष पर गर्व है। सुजान एक झटके से उठ खड़ी हुई जैसे कुछ हुआ ही नहीं। आनन्द सुजान को निर्निमेष दृष्टि से ताकता रहा। यह केवल नारी नहीं, नारी के रूप में देवी आकृति है।

'सुजान ! परीक्षा के लिए यही आचरण चुना। देखो, मैं पुरुष हूँ,

दुर्बलता मेरी परिभाषा के अन्तर्गत आती है। ईश्वर के लिए ऐसी कठिन परीक्षा अब और कभी''''।'

'आनन्द ! मेरी ओर देखो, ध्यान से देखो। क्या मैं पहले जैसी ही नहीं दिख रही हूँ। मेरी चेष्टाएँ स्वाभाविकता से दूर थीं, फिर भी मैंने वह सब किया जो एक धैर्यवान् को ध्वस्त करने के लिए पर्याप्त था परन्तु आज इस परीक्षण से तुम्हारा जो रूप मैंने देखा है वह स्यात् भगवान् में ही सुलभ हो। हाड़-मांस-रुधिर से निर्मित काया यह तूफान नहीं झेल सकती जो मैंने अभी-अभी उत्पन्न किया था। मेरे लिए, मेरे प्यारे आनन्द ! यह नहीं बात नहीं। याद है, मैंने तुमसे किसी समय अपने अतीत की चर्चा की थी ?'

'पर तुमने कहा ही क्या था ?' आनन्द ने प्रश्न किया।

'आनन्द ! वह अवसर उपयुक्त नहीं था, आज बता रही हूँ। आओ यहाँ कक्ष में फर्श पर बैठें।' आनन्द चुम्बक की भांति खिचता हुआ सुजान के पीछे-पीछे चला। कक्ष के मध्य में सुजान बैठ गई। पास ही आनन्द भी बैठा।

'आनन्द ! मैं एक स्वर्णकार की बेटी 'सुकन्या' थी। बड़ा दुलार था मेरा। मुझे साहित्य-संगीत से साथ-साथ धार्मिक शिक्षा प्राप्त हुई। धनाभाव की स्थिति में मेरा ब्याह हुआ परिणाम-स्वरूप मेरे पतिदेव इतने स्थूलकाय और रुग्ण थे कि किसी तरह एक वर्ष उनकी सेवा में बीता और वे परलोकवासी हो गए। बाद में मुझे पता चला कि वे वेश्यावृत्ति के शिकार थे। मैं पाठ-पूजा में शेष जीवन बिताना चाहती थी परन्तु मेरे देवर मुझ पर ऐसे पागल बने कि मुझे आगरा की विख्यात अप्सरा विश्वमोहिनी के यहाँ ही शरण मिल पाई। विश्वमोहिनी मुझे यमुना-तट पर उस समय मिली जब मैं आत्महत्या के लिए जा रही थी। उस समय मुझे उसमें देवी का रूप दिखा। मैं उसकी बातों में आ गई। उस समय सदाशिव ने मुझे नृत्य-कला में प्रवीण बनाया। फिर मैंने नाचना प्रारम्भ कर दिया किन्तु विश्वमोहिनी को मात्र इसी से सन्तोष न हुआ उसने मुझसे

रात में भी कुछ कराना चाहा तभी मैंने सदाशिव से प्रार्थना की क्योंकि मैं वह सब सह नहीं सकती थी। हालांकि तुम न जाने.....'

'सुजान! अभी भी आनन्द की परीक्षा ही चल रही है क्या?' आनन्द उदास हो उठा था।

'आनन्द! मेरे आनन्द! अब तो तुम्हें समझ ही गयी हूँ इसीलिए तो ऐसा कह रही हूँ।'

'आगे क्या हुआ?' आनन्द ने प्रश्न किया।

'आगे तो वही हुआ जो आज तुम देख रहे हो। सदाशिव मुझे दिल्ली ले आया और कुछ हेम के साथ शास्त्रीय संगीत पर नृत्याभ्यास चला। हेम ने जी-जान लड़ाकर ऐसे-ऐसे जटिल राग तैयार कराए जो मेरे लिए मुश्किल थे, परन्तु.....'

'परन्तु क्या सुजान?'

'परन्तु हेम भी किसी लालसा से ही यह सब कर रहा था।'

'क्या द्रव्य का लोभी....।'

'आनन्द तुम भोले हो, बिल्कुल भोले। अरे, सोचो सुजान से द्रव्य की लालसा? वह मुझे उसी नर्क में घसीटना चाहता था जिससे मैं भागी थी।' सुजान एक क्षण रुकी। उसकी आंखें डबडबा आयीं। वह भावावेश रोक न पायी और आनन्द के चरणस्पर्श हेतु झुकी आनन्द पीछे की ओर खिसक गया, वह बोली, 'आनन्द! अब मत भागो मैंने तुम्हें जिस रूप में पाया, उसे मैं इस जन्म की तो क्या जन्म-जन्मान्तर की तपस्या का फल ही समझूंगी।'

'सुजान! तुम सचमुच देवी हो तुमने अपने इसी अल्पकाल में जीवन की जिस विभीषिका से लोहा लिया वह पुरुषों के भी वश की बात नहीं। तुमने इस संघर्ष से जो सिद्धि प्राप्त की है और नृत्यकला में तुम्हारी जो दक्षता है वह भारत के इतिहास में सदा अमर रहेगी।' आनन्द ने सोल्लास कहा और बड़ी तन्मयता से सुजान की ओर देखता रहा।

'नहीं आनन्द ऐसा नहीं। जिसे तुम मेरी कला समझ रहे हो वह

मात्र मेरो जिजीविषा है। आखिर जीने के लिए कुछ तो करना ही पड़ता है। मैंने यह कला भी किसी की साधना से प्राप्त की और उसने जो कामना मन में रखकर यह कला सिखाई वह भी पवित्र नहीं इसीलिए वह भी मेरे लिए विडम्बना मात्र है। छोड़ो, इन बातों का कहीं अन्त तो है नहीं। अब दैनिक कार्यों में विलम्ब हो रहा है अतः तुम शीघ्र वस्त्र बदल कर पथ्य ग्रहण कर लो। दो दिन से कुछ खाया भी तो नहीं है। चलो।' कहकर सुजान आँगन में आ गई।

नहा धोकर सुजान पूजागृह में गयी उस समय आनन्द की माँ श्याम-साँवरे के ध्यान में मग्न थी। सुजान ने पुष्पार्पण किया तथा मधुर स्वर में बोलने लगी—

वंशी विभूषित करान्नव नीर दामाद्
पीताम्बरादरुण बिम्ब फलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखारविन्दनेत्राद्
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने॥

गोमती ने सुजान की ओर आँख उठाकर देखा और भक्ति भाव में गद्गद हो उठी। 'बेटी! तुम्हारी वाणी में साक्षात् सरस्वती विराजमान हैं। यह तो बताओ बेटी! जो कृष्ण इतने शान्तिप्रिय और मृदुल स्वभाव के थे तथा जिनकी सहृदयता पर किसी समय सारा संसार मुग्ध था, उन्होंने अपनी आँखों के सामने इतना भयकर संग्राम कैसे होने दिया? मुझे विश्वास है बेटी! यदि वे चाहते तो यह भीषण नर संहार न होता।' 'हाँ माँ! यह आप ठीक कहती हैं कि यदि श्रीकृष्ण चाहते तो महाभारत का युद्ध अवश्य रुक जाता किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया जिसका कारण यह रहा कि वे प्रत्यक्ष देख रहे थे कि पाण्डवों को अपना अधिकार मिलना तो दूर रहा जीवन बिताना भी दूभर हो गया था उनका अधिकार दिलाने के लिए ही उस महामानव को ऐसा करना पड़ा। इस युद्ध का एक मात्र कारण था दुर्योधन उसका हठ तथा धृत-

राष्ट्र का पुत्र मोह। मां जी ! जहां ऐसे दुर्योग एकत्र हो जाते हैं वहां इसी प्रकार की परिणति होती है। इसमें इन श्याम सांवरे का क्या दोष ? इन्होंने तो कर्मयोग का सूत्रपात किया। वे भारत को एक शक्ति-शाली गणराज्य बनाना चाहते थे और बनाया भी, किन्तु उस भयंकर युद्ध के बाद। वे स्वयं कर्त्तव्यनिष्ठ थे और इस मार्ग को प्रशस्त बनाने में उनका श्रम, त्याग और परमार्थ भाव किसी भी युग में भुलाया नहीं जा सकता। अच्छा ! अब एक भजन सुनिए।' 'हां बेटी ! मैं यही कहने वाली थी।' सुजान गाने लगी—

'श्याम मोरे नयनन बीच गड़े।
मोहिनी मूरति सांवरी सूरति कुंजनि बीच पड़े।'

अन्तरा का आलाप सीधा अन्तःकरण का स्पर्श करता था। गोमती की बन्द आंखों से दो आंसू ढुलक गए। बिना साज-बाज सुजान का कल कण्ठ सकल साज साजे था। टेक पर शब्दों में मिठास देते-देते सुजान की दृष्टि आनन्द पर पड़ गयी। 'श्याम मेरे नयनन' कहते-कहते वह आनन्द की ओर एकटक देखती रही। आनन्द आत्मविस्मृत-सा खड़ा था इतने में गोमती ने आंखें खोलीं। आनन्द झेंप गया। गोमती ने सुजान की प्रशंसा में स्वभावानुसार कुछ कहा भी नहीं। सुजान समझ गयी मां को क्या बुरा लगा। आनन्द ने स्पष्ट अनुमान लगा लिया कि उसका और सुजान का सम्बन्ध परस्पर की कलाप्रियता तक ही सीमित रहे, मां यही चाहती हैं। सुजान के प्रति मां की उत्तरोत्तर स्नेह-वृद्धि देखकर आनन्द जो सोच लेता था बात वह नहीं। मां माथुर वंश की संभ्रान्त महिला थीं। कुल की शान तथा वंश मर्यादा की सीमा मां कदापि नहीं लांघ पायेंगी। पूजा-पाठ से ही नहीं मां विचारों की रूढ़ि में जकड़ी हुई थीं। सुजान उनके रसोईघर में प्रवेश पा गयी, इसे मां की स्वार्थ भावना ने ही स्वीकारा था।

पूजा-गृह में यह विचित्र स्थिति ! आनन्द वहां से हटने को ही हुआ

कि गोमती ने पुकार लिया—'आनन्द बेटा ! प्रसाद नहीं लोगे ?' 'लाओ माँ !' कहकर प्रसाद लेकर बाहर चला गया । माँ ने सुजान को भी श्रद्धा से प्रसाद दिया । सुजान ने चरण छुए । 'जीती रहो बेटी ! मैं तुमसे कुछ माँगना चाहती हूँ ।' गोमती ने कहा । सुजान की शंका बढ़ने लगी फिर भी उसमें स्वाभिमान का भाव उभरा—'माँ जी ! याचना क्यों आप आदेश दें क्योंकि माँ अपनी बेटी से माँगती नहीं, उसे बहुत कुछ देती है । जल्दी कहो माँ, आपकी इच्छा मेरे लिए आज्ञा तुल्य है ।'

'बेटी ! मेरे वंश को उत्तराधिकारी दे दो, बस । इसके लिए आदेश नहीं याचना की आवश्यकता है ।'

सुजान धम्म से बैठ गयी । उसका ज्ञान मुखर हुआ बोली—'माँ ! उत्तराधिकार के योग्य....।'

'तो सच-सच बताओ तुमने मेरे आनन्द को अपने मोहपाश में क्यों जकड़ रक्खा है । मुझे विश्वास है यदि तुम इसे जरा-सा ढीला कर दो तो अल्पकाल में ही माथुर कुल का दीप प्रज्वलित हो सकता है ।'

'पर माता जी ! मैंने कभी बाधा तो नहीं डाली ?'

'बाधा ? बाधा होती तो टल भी जाती । बेटी ! तुम चाहो तो सब कुछ हो सकता है । तुम समर्थ हो । मेरा रोम-रोम तुम्हें आशीर्वाद देगा ।' गोमती को आशा बँधी क्योंकि सुजान गम्भीर हो गयी । उल्टे-सीधे कई विचार सूत्र उसके मानस पर बिखरे । उसकी मुद्रा बदली । प्रेम पुजारिन का निश्चय स्फुट हुआ—

'माँ जी ! आनन्द मुझसे अलग नहीं रह सकते, यद्यपि मैं चाहूँ तो....।'

'तो तुम उससे अलग रह सकती हो, बस बन गया काम धन्य हो श्याम साँवरे —।' गोमती एक क्षण के लिए पूर्ण मनोरथा बन गयीं, परन्तु जैसे ही सुजान के शब्द उनके कर्णपट पर टकराए, वे विस्मय में पड़ गयीं....

'माँ जी ! यह बच्चों का खेल नहीं । ऐसा होना आनन्द के स

बिल्कुल वश की बात नहीं और मेरे लिए भी आत्महत्या जैसा ही होगा। वैसे इतने पर भी आपकी इच्छा पूरी हो जाए, निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता।'

'बेटी ! फिर भी तू चाहे तो सब कुछ संभव है।'

'माँ जी ! आनन्द अभी पूर्ण स्वस्थ नहीं हैं। उन्हें स्वास्थ्य लाभ करने दीजिए। मेरी ओर से आप निश्चिन्त रहें। मेरे और आपके मध्य कोई रहस्य नहीं। आप जानती हैं—मैं क्या हूं ? कौन हूं ? जो बात मेरे बस की नहीं उसके लिए वचनबद्ध नहीं हो सकती, हां प्रयत्न करके देखूंगी।'

'तो मैं आशा रक्खूं ?' गोमती के मुख पर प्रसन्नता का भाव स्पष्ट झलक रहा था। सुजान बोली—'माँ जी ! आप तो जानती ही हैं····।' सहसा घबड़ाए हुए-से बहादुर सिंह ने आकर सबको चौंका दिया—'माँ जी ! सुजान को बन्दी बनाकर यहां से ले जाने का शाही फरमान लेकर मुगल सेनाधीश गुलाम हुसैन सिपाहियों सहित आंगन में खड़े हैं। इन्हें बुलाया जा रहा है।'

'सुजान को बन्दी बनाकर ले जायेंगे ? इसका अपराध ?' गोमती क्रोधावेश में बोल पड़ीं—'उनसे बोल दो सुजान यहां से नहीं जाएगी, कदापि नहीं जाएगी समझे !'

सुजान परिस्थितियों से अवगत हो चुकी थी, साहस बटोरकर बोली —'ठाकुर, उनसे कहो मैं तैयार हूं।' सुजान ने माँ के चरण छुये और आंगन की ओर तेजी से बढ़ी। सामने आनन्द पड़ गया—

'सुजान ! चलो अन्दर बैठो। मैं पथ्य लेकर स्वयं जाऊँगा। बिना मेरे गये शाह का भ्रम दूर नहीं होगा।'

'ऐसा नहीं होगा, आनन्द ! मैं इस समय बन्दी बन चुकी हूं। शाह की आज्ञाधीना हूं, तुम इसमें हस्तक्षेप मत करो।' सुजान जैसे दृढ़ हो चुकी थी। परन्तु आनन्द भी तुला था। उसने साधिकार हाथ पकड़कर अन्दर चलने को कहा। यद्यपि माँ ने सुजान के अन्तर में अशांति का

वातावरण उत्पन्न कर दिया था और उसको बहुत कुछ सोचने पर बाध्य कर दिया था किन्तु आनन्द के सहज अनुराग मे सारा मालिन्य जैसे धुल गया। उसने धीरे से कहा, 'आनन्द! तुम तो अपनी परीक्षा मे खरे उतरे अब मेरी बारी आई है। देखो, माँ जी का कहना है मैं तुम्हारे मार्ग से बिल्कुल हट जाऊँ ताकि तुम विवाह करके वंश चलाओ। वह ठीक ही कहती हैं। *कुल-वृद्धा के नाते यही उनका कर्तव्य भी है। उधर रंगीले-शाह मुझे बन्दी बनाकर अपनी इच्छा पूरी करना चाहता है। आनन्द!* मैंने अपने जीवन मे इससे भी दुर्दान्त दृश्य देखे हैं, बड़ी-बड़ी आँधियों ने पूरी शक्ति लगाकर झकझोरा है परन्तु सुजान जो थी है तुम्हारे समक्ष।' सुजान ने धीरे से हाथ छुड़ा लिया।

'सुजान! इस तरह अपनी आँखों के समक्ष ही मैं स्वयं को लुटते देख नहीं पाऊँगा। माँ जो चाहती है वह उनकी मृग-मरीचिका है, उन्हें मैं सहज ही समझा लूँगा। शाह जो चाहता है, वह कभी नहीं होने पायेगा। मैं सारे साम्राज्य मे उथल-पुथल पैदा कर दूँगा। मेरे प्यारे सुजान! रुक जाओ। इस गुलाम हुसैन के साथ तुम्हें लाल किले में किसी भी कीमत *पर नहीं जाने दूँगा।' आनन्द की मुद्रा बिल्कुल बदल गयी थी।* आगे बढ़ती हुई सुजान अचानक रुक गयी। उसमे आनन्द के प्रति अपनत्व जागा। उसने धीरे से कहा, प्यारे आनन्द मैं कहीं नहीं जा रही। मुझे बन्दी बनाने का यह नाटक नया नहीं है। तुम बन्दी बनाने पर ही आपे से बाहर हो रहे हो, और मैं अपने वध तक की कल्पना कर चुकी हूँ। यही जीवन के यथार्थ हैं आनन्द इनसे मुँह मोड़न वाले कायर होते हैं। रंगीले शाह भी भगवान् की ही इच्छा पूरी कर रहा है। जो होना होता है, वही होता है। तुम कवि हो, सहृदय हो, इसलिए व्यग्र हो रहे हो। वादा करो कि मेरे विषय मे किसी से अनायास नहीं उलझोगे, मुझे वचन दो।'

'सुजान तुम उलझने की सोच रही हो, मैं किले में आग लगा दूँगा। मेरी आँखों के सामने मेरा हरा-भरा संसार उजड़ जाए और मैं एक

साधारण दर्शक की भांति देखता रहूं । सुजान तुम यहीं आराम से बैठो । मैं गुलाम हुसैन के साथ जाकर शाह को वस्तु स्थिति से परिचित करा देता हूँ ।' आनन्द चलने लगा ।

'आनन्द ! तुम्हें मेरी सौगन्ध है जो एक पग भी आगे बढ़े ।' आनन्द जहां का तहां खड़ा रह गया ।

सुजान ने आनन्द को कुछ और समझाना व्यर्थ समझा और वह झटके से आँगन में आ गयी । उसे तैयार होते देख गुलाम हुसैन उसके पीछे चलने लगा । सहसा पीछे से एक उच्च स्वर गूंजा—'ठहरो गुलाम हुसैन ! तुम जाकर शाह से कह दो कि सुजान इस हवेली से गिरफ्तार नहीं हो सकती । उसे बन्दी बनाना है तो उसके भवन से उसे ले जाएँ ।'

'मां जी !' गुलाम डर गया । वह जानता था, आनन्द जितना सीधा है, उसकी मां उतनी ही कठोर हैं, 'शाही फरमान है मां जी ! मैं तो गिरफ्तार करके ही ले जाऊंगा ।'

'गुलाम हुसैन ! मैं जो कहती हूं, वही करो । देखो, शाह पत्थर नहीं हैं । उन्हें जब मालूम हो जाएगा कि सुजान मेरी कुलवधू है तो वह अपना निर्णय बदल देगा । गुलाम हुसैन ! यह शाही दरबार की शोभा बढ़ाने वाली नर्तकी नहीं, मेरे आनन्द की वहू है । मेरे कुल के सम्मान का प्रश्न है । तुम सेनापति हो साथ ही आनन्द के पिता को बड़े भाई का सा सम्मान देते रहे हो । मैं तुम्हारे सामने अपनी कुल-लक्ष्मी की भीख मांग रही हूं, आशा ही नहीं यकीन है, मुझे निराश नहीं होना पड़ेगा ।' आनन्द की मां क्या कह गई, एक साथ बोल गईं, किसी और को कुछ सोचने-कहने का कोई अवसर नहीं दिया । वे जैसे आवेश में थीं बड़ी ही तत्परता से सुजान के पास पहुँचीं और उसे बाहुओं में लपेटे हुए आँगन के कक्ष की ओर चलने लगीं । गुलाम हुसैन अपने सिपाहियों के साथ हवेली से बाहर निकल गया ।

आनन्द को जैसे मुंह मांगा वरदान मिल गया था । वह मां के कक्ष की ओर चला । उधर मां की ममता तथा उदारता देखकर सुजान पानी-

पानी हो रही थी। कुछ समय पूर्व इसी माँ से वह कोरा उत्तर पा चुकी थी और इस समय उन्होंने उसे बन्दी बनाने से रोक लिया। इतना ही नहीं वह कुलवधू बन गई। वाह रे जीवन के अद्‌भुत नाटक! सुजान न हँस पा रही थी और न रो पा रही थी। सुजान के मन में अशांति की आँधी बह उठी। अन्दर ही अन्दर स्वर गूँजे—'अंधे के हाथ इस प्रकार बटेर नहीं लग सकती।'

उसने गोमती के चरण छुये और बोली, 'माँ जी आप सचमुच महान् हैं। हिमालय की ऊँचाई का स्पर्श हो सकता है आपका नहीं। आपने जो कुछ निर्णय दिया, यह रंगमंच के तो अनुकूल है पर यथार्थ जीवन के सर्वथा प्रतिकूल है। आपने मेरा सम्मान किया, इससे मेरा भी कर्त्तव्य है कि मैं आपका ध्यान रखूँ। माँ! मैं आपकी वधू नहीं बन सकती वधू तो ले आनी है। अब मैं आनन्द को इस कार्य के लिए अवश्य तैयार कर लूँगी।' कहती हुई सुजान कक्ष के बाहर निकली। चौखट के पार्श्व में आनन्द भी खड़ा सब सुन रहा था। सुजान ने आनन्द की ओर देखा तक नहीं। वह आँगन पार करके मुख्य द्वार पर आई। बहादुर सिंह सम्मान में द्वार खोलने लगा। सुजान बोली, 'ठाकुर! मेरे साथ लाल किले चलो।'

'जैसी आज्ञा मालकिन!' बहादुर का मालकिन शब्द सुजान को प्रिय लगा। वह भी वही शब्द दुहरा रही थी मा·····ल·····कि·····न। बग्घी लाल किले की ओर बढ़ रही थी और सुजान के मानस पर कई चित्र उभरे और धुँधले पड़े।

बग्घी में सुजान जैसे ही लाल किले के लाहौरी दरवाजे पर पहुँची, अचानक घोड़े ठमक गए। सुजान ने परदा उठाकर देखा बग्घी के चारों ओर खड्गधारी सैनिक घेरा डाले हुए हैं। सुजान बन्दी बना ली गई। धीरे-धीरे संकेत के सहारे बग्घी लाल किले के अन्दर दाखिल हुई। सुजान का मन भारी हो गया। भय से नहीं वितृष्णा से, लज्जा से नहीं जुगुप्सा से। घृणा का भाव उसके मन में कभी नहीं जगा। रुग्ण पति की पूरे एक वर्ष तक बिना किसी झिझक-हिचक के सेवा-रत रही। उसका खिलता हुआ यौवन उस जघन्य काया की छाया में, बारहमासा के राग की भांति मस्त पड़ा रहा, उसके मुखमंडल पर विषाद या घृणा की एक क्षीण रेखा भी न खिचने पाई। यहां तक कि उसने भाग्य को भी कोसना उचित न समझा। वह जानती थी कि भाग्य को वही दोष लगाते हैं जिनमें सहिष्णुता नहीं होती। अपनी आंखों के सामने ही सुजान ने अपने उस पति को दम तोड़ते देखा था, जिससे वह कुछ भी न पा सकी थी, परन्तु रोई थी। रोई, इसलिए नहीं कि वह किसी आशा में थी और अब नैराश्य सागर में डूब गई, वरन् इसलिए कि लोग आजीवन पति का साहचर्य पाते हैं और सुजान को ऐसा पति भी इतने अल्पकाल तक ही मिल पाया। इसे विडम्बना कहें या कुछ और ?

बग्घी मन्दगति से दीवाने खास की ओर सरक रही थी। सुजान ने पर्दा उठाकर देखा—गुलाब के पुष्प पराग लुटा रहे थे। उसकी आंखों के सामने विश्वमोहिनी का भवनभञ्ज के दृश्य की भांति खिंच गया। विश्वमोहनी स्वर्ण मोहरों को गिन-गिनकर मंजूषा में रखती और पान पर पान चबाती, परन्तु सुजान ने उस विचित्र नारी को कभी प्रसन्न नहीं देखा।

उसकी त्योरी में सदा बल पड़े रहते। हमेशा चीख़ती-चिल्लाती। सुजान से उसने बार-बार कहा था—'बेटी वेश्या बनना सबके वश की बात नहीं। हाँ एक बार इस घाट पर उतर जाने के बाद स्वर्ग ही स्वर्ग है किन्तु यहाँ से छोड़कर जाना नरक में गिरने के समान है।' विश्वमोहिनी छँटी हुई वारनारी थी। सुजान के लक्षणों से भाँप गई थी कि यह कोठे पर रुकने वाली नहीं। आज सुजान को विश्वमोहिनी की बात याद आने लगी। आज पहली बार सुजान के मन में वह गर्हित जीवन अच्छा लगा। सोचने लगी—'सुजान तूने भाग कर अच्छा नहीं किया। जैसा आगरा वैसा दिल्ली। वासना के भूखे भेड़िये सब जगह हैं। उसे लाल किले की प्राचीरों में घिरे लोग जैसे काटने को दौड़ने लगे। वह फफक पड़ी। आँसू बेभाव बह उठे। सहसा उसे आनन्द की याद आई। हृदय ने ढाढ़स बाँधा, मनोबल बढ़ा और माँ जी के द्वारा गुलाम हुसैन को दिया गया दोटूक उत्तर याद आ गया। क्या? माँ जी सचमुच उसे अपने पवित्र ऐतिहासिक माथुर वंश की कुलवधू बना लेंगी? एक क्षण के लिए उसके मानस में माँ जी का उदात्त चरित्र पौराणिक कथानक-सा गूँज गया। उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि अब तक वह चाहे जो रही हो किन्तु अब जब माँ जी ने उसे अपने मुँह से कुलवधू स्वीकार कर लिया तो वह वही पवित्र कुलाङ्गना ही है जो आनन्द के उत्तम वंश की शोभा बढ़ाएगी।

सुजान में स्वाभिमान का संचार होने लगा। उसकी ग्रीवा अचानक तन गयी। उसने बग्घी में बैठे-बैठे साहस बटोरा और किसी भी परिस्थित का सामना करने के लिए कटिबद्ध हो उठी। सहसा घोड़ों की टाप ठमकी, बग्घी रुक गयी। तीन-चार सिपाही उसको बीच में करके दीवाने खास की ओर ले चले। यही वह दीवाने खास है जहाँ प्रथम बार सदाशिव सारंगी के साथ सुजान बड़ी उत्कण्ठा लिए तथा भावी जीवन की उज्ज्वल आशा बाँधे आयी थी और आज? इसी स्थान पर वह बन्दी है। उसने दूर से देखा—रंगीले शाह अधलेटा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा है। उसके बिल्कुल समीप अधनगी-सी लौंना बैठी है। दो दासियाँ दो ओर से पंखा

झल रही हैं। शेष समूचा दीवान खाली पड़ा है। भालाधारी सिपाही दीवान की देहलीज तक आये, उसके पश्चात् सुजान सिर झुकाये मन्द गति से शाह की ओर बढ़ी। उसे रंगीले शाह के प्रति श्रद्धा थी। शाह ने उसे बड़ा प्यार दुलार दिया। एक प्रकार से उसे पाला। शाह से शिकायत न थी। इसी भाव में डूबती-उतराती वह शाह के सामने पहुँची। सम्मान से शाही आदाब बजाया और एक किनारे सिर झुकाये खड़ी रही। रंगीले शाह ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए उसे ऊपर से नीचे तक देखा। वे समझ गए सुजान दण्ड के भय से भयभीत हो रही है परन्तु उनके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं था। सुजान की वेष-भूषा स्पष्ट बता रही थी कि अब वह नर्तकी नहीं अपितु एक सम्भ्रान्त परिवार की नारी है। रंगीले शाह इसे बिल्कुल नहीं बरदाश्त कर सकते थे। हुक्के की नली एक ओर झटक कर वे जैसे तड़प उठे—'क्यों री ! तू अब तक कहाँ थी ? सिपह सालार गुलाम हुसैन के साथ क्यों नहीं आई ? तू ऐसी नमक हराम निकलेगी यह मैंने ख्वाब में भी नहीं सोचा था ! बदजात !!

'अलीजाह !' सुजान जैसे रो पड़ी थी—'मैंने आने से इनकार नहीं किया था। भला इस दासी की इतनी जुर्रत कैसे हो सकती है कि जहाँपनाह याद करें और यह न आये। कुसूर माफ हो परवरदिगार !' अब सुजान सचमुच डर गयी। वह जानती थी कि शाह की आज्ञा का उल्लघन बड़ा महँगा पड़ेगा। शाह ने जैसे सुना ही नहीं। 'माबदौलत की शान में बट्टा लगा है तू मामूली-सी तवायफ थी। हमने तुझे आज इस लायक बनाया तो तू हम्हीं से ऐसा सलूक कर बैठी। जानती है—इसका नतीजा ? तुझे जंगली कुत्तों के आगे डाल दिया जायेगा और वे तुम्हारी बोटियाँ नोच-नोचकर खा जायेंगे।' शाह जैसे आपे से बाहर हो रहे थे। लीला कनखियों से सुजान को निहार रही थी। सुजान का तो जैसे सर्वस्व लुट गया हो। वह जितना ऊँचे चढ़ी थी, इस समय उतना ही नीचे पड़ी हुई थी। जैसे दलदल में पड़ा व्यक्ति निकलने के लिए छटपटाता हो, लगभग उसी दशा को सुजान प्राप्त हो रही थी। कुछ समझ में नहीं आ

रहा था कि क्या उत्तर दे। शाह का क्रोध भयंकरता की सीमा छू रहा था। वे इस समय पीछे हाथ बाँधे टहल रहे थे। सुजान ने मौन भंग करते हुए निवेदन किया—'हुजूर ! गुलामों से कुदरतन गलती हो ही जाती है और आलीजाह बाख़बी समझते हैं कि खादिमा से यह पहली चूक हुई है ! जहाँ हजारों हुजूर की दरियादिली से पल रहे हैं, वहाँ इस नाचीज को अपने कदमों की साया में इनायत बख्श देंगे, तो अल्लाहताला हुजूर का इकबाल बुलन्द करेंगे।' कहकर सुजान शाह के पास तक गयी और सिर झुकाते हुए बोली, 'वैसे तो आलीजाह ! जो कुसूर इस दासी से हुआ है उसकी सजा जरूरी है। परवरदिगार ! आप चाहें तो अपने हाथों यह सिर कलम कर दें।' कह कर सुजान रो पड़ी। रंगीले शाह जिस रूप में बोल गये थे, वह उनका असली रूप नहीं था। वे सुजान को दण्डित करना चाहते थे। परन्तु इस नर्तकी पर वे इस कदर फ़िदा थे कि उसके आँसू वे सहन न कर सके। वे अपने आसन पर आकर बैठ गए। लीला ने बड़ी तत्परता से सुराही से जाम उडेलकर शाह को पिलाया। जाम पीकर शाह में उन्माद की लहरें लहराने लगीं। उन्होंने सुजान को इशारे से अपने पास बुलाया।

सुजान भयभीत हिरनी-सी धीरे-धीरे शाह के सामने आयी। शाह ने उसकी ओर देखा। सुजान ने कृत्रिम मुस्कान से शाह को पानी-पानी कर दिया। क्रोध का ज्वर अब उतर चुका था। शाह ने हुक्के की नली हाथ में ली और बोले—'देखो सुजान ! मावदौलतगर चाहते तो कब से तुम लाल किले की इन्हीं मजबूत दीवारों में कैद होतीं और अगर हमने ऐसा नहीं किया तो इसकी एक खास वजह है। वह यह कि हम तुम्हारे हाव-भाव पर दिलोजान से फ़िदा हैं। हम यह बरदाश्त नहीं कर सकते कि तुम किसी और के चंगुल में पड़ो, खास करके मीरमुंशी घन आनन्द के पास देखकर हमारा खून खौलने लगता है। आनन्द का हमारे ऊपर बहुत एहसान है, तो इसका यह मतलब नहीं कि वह मावदौलत की शान को मिट्टी में मिला दे। हम उसके एहसानों का बदला और ढंग से चुकायेंगे।'

'जहाँपनाह ! इस दासी की क्या मजाल जो खानदाने मुगलिया की शान से खिलवाड़ करे । मैं वादा करती हूँ, आगे हुजूर के सामने ऐसी कोई गुस्ताखी नहीं होगी जिससे अलीजाह को कुछ और महसूस करना पड़े । सुजान फिर मुस्कराकर शाह पर जाम का उन्माद दूना कर बैठी । वस्तुतः यह कला उसने विश्वमोहिनी से सीखी थी । यद्यपि उसे ऐसा कृत्रिम सम्मोहन अरुचिकर प्रतीत होता था तथापि आज तो इसी के बल पर वह जैसे बाल-बाल बच गयी ।

'सुजान ! शाबाश मेरी जान !' शाह जैसे किसी और लोक में विचरण कर रहे थे । 'लीला ! तुम आज से सुजान को अपना उस्ताद बना लो और नाच की सारी अदायें इससे सीख लो । देखो ! यह हमारे दरबार की हीरा है हीरा !।जाओ सुजान हम तुम्हें बख्शते हैं । कहते हुए रंगीले शाह हरम की ओर चल दिया ।

सुजान आदाब बजाकर लीला के साथ ही बाहर आयी तो देखा निर्मला आंचल से मुँह ढांपे रोये जा रही और सदाशिव उसे ढाढ़स दे रहा है । सुजान को देखते ही सबकी जान में जान आई । निर्मला दौड़कर सुजान के वक्ष से लिपट गई । एक दासी की पवित्र निःस्वार्थ स्नेह भावना देखकर सुजान की भी आंखें प्रेमाश्रु पूरित हो गई । उसकी इच्छा रो लेने की हुई । इसलिए नहीं कि उसे अकारण अपमानित किया गया था, अपितु इसलिए कि स्वामिनी के संकट का अनुभव मात्र उसके सेविका को विकल बनाए जा रहा था । वस्तुतः सुजान नर्त्तकी बाद में थी धर्मभीरु पहले । उसके मानस में जिस पवित्र आस्था ने घर बना रखा था उसे सहस्त्रशाह भी डिगाने में सर्वथा असमर्थ हैं । उसे स्पष्ट प्रतीत हो गया कि शाह भी उसे कुछ और ही समझ रहा है, वह उसके आनन्द से ईर्ष्या भी करने लगा है । वे सभी दीवाने खास से बाहर आते ही दो बग्घियों में बैठ गये और कुछ ही देर में लाल किले की प्राचीर के बाहर आ गए ।

आगे की अपनी बग्घी में सुजान निर्मला के साथ बैठी थी और पीछे

सदाशिव अकेला। बग्घी जैसे ही चाँदनी चौक में पहुँची, सुजान ने देखा —कलाराशि घोड़े पर बहादुर सिंह के साथ आनन्द लाल किले की ओर बढ़ रहा है। सुजान कुछ क्षण उसी की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखती रही। आँख से ओझल होते ही उसकी इच्छा वापस लाल किले की ओर चलने की हुई। कोचवान को आदेश दिया। बग्घी रुक गयी। निर्मला चौंकी। उसके चौंकने का कारण भी था। सारे शहर में शाह के बागियों का खुफिया दल घूमा करता है। लाल किले में आने-जाने वालों पर कड़ी निगाह रखी जाती है। अफवाहें भी उड़ रही हैं कि ईरान का तख्ता पलटने के बाद नये शाहंशाह नादिरशाह की दृष्टि दिल्ली पर लगी है। सुजान ने गाड़ी मोड़ने की इच्छा प्रकट की।

'क्यों ?' निर्मला सहमी-सी बोली।

'देखा नहीं आनन्द किले की ओर घोड़े से जा रहे हैं। इस समय शाह के पास जाना खतरे से खाली नहीं।' सुजान खीझती हुई बोली।

बग्घी मुड़ तो गयी, पर घोड़े आगे बढ़ने से जैसे विद्रोह कर बैठे। भूखे-प्यासे तो थे ही, अड़े तो अड़ ही गए। कोचवान गद्दी से उतरा, घोड़ों को पुचकारा दुलारा और गद्दी पर बैठकर जैसे ही रास खींची, घोड़े बिदक गए और बग्घी को मोड़कर घर की ओर चल पड़े। कोचवान लाचार हो गया। सुजान हताशा में डूब गयी। उसे आनन्द का शाह के पास जाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। जिस शाह के पास से लाया फेंका कर वह अपमान का घूंट पीकर लौटी थी, आनन्द आवेश में उससे उलझ जायेगा। बनी बात बिगड़ जाएगी। फिर क्या होगा। कलह बढ़ेगा। उसे अपनी चिन्ता कम थी, आनन्द की अधिक। वह स्वाभिमानी है, टूट जायगा, झुकेगा नहीं और उसके हित में हानि ही है। बग्घी तीव्र गति से भागी जा रही थी और सुजान के मन में भी नाना आशंकाओं के विचार बन-बिगड़ रहे थे। कुछ भी हो, सुजान इस बात से आश्वस्त थी ही कि उसने जिसे अपने हृदय का सम्राट स्वीकारा है, वह सचमुच लौह पुरुष है और इस पद के पूर्णतः योग्य है। उसकी आँखें आनन्द के

चिन्तन में मूंद गयीं। लोग कहते हैं—प्रेम पंगु होता है उसे चलते रहने की चिन्ता तो रहती है परन्तु चले तो कैसे चले। उसे दो के पांवों का सहारा चाहिए और यह तभी संभव है जब दोनों एकरस हो जाएं, तो असंभव नहीं तो सहज भी नहीं है। जहां भाषा मूक हो, भाव मचल रहे हों, मन की समाधि लगी हो, अन्तः बाह्य का अन्तर लुप्त हो गया हो, वहां कोई दैवी शक्ति ही हाथ लगाए तो सिद्धि की संभावना है, अन्यथा इस छल-प्रपंचपूर्ण जगत् में अर्थ के अनर्थ भी देखे गए हैं। पुरुरवा ने उर्वशी के लिए क्या नहीं किया, समर्पण की किस सीमा को उस भोले राजा ने नहीं छुआ, सर्वस्व देकर भी उसे जो मिला वह उसके जीवन में अभिशाप बनकर छाया रहा। उर में बसी उर्वशी को खोकर उसने तो पश्चात्ताप किया उसे सहज नहीं भुलाया जा सकता। सुजान को उर्वशी पर बड़ी खीझ आई। यद्यपि इन्द्रलोक का सुख उसे मिला तथापि क्या पुरुरवा को उस सुख से तोलना उचित है? सुजान ने नकारात्मक संकेत में गर्दन हिलाई निर्मला बड़े गौर से देख रही थी। उसने स्वामिनी को कई बार ऐसी स्थितियों में देखा था। जलपात्र लिए खड़ी रहती थी और सुजान किसी अन्य लोक में विचरण करती रहती। नारी के स्वभाव में यही विलक्षणता है। वह बोलेगी तो संसार के पुरुषों को चुप कर देगी और चुप रहेगी तो स्वभावत: उथल-पुथल मच जायगी। 'मालकिन! आपने तो यह पूछा ही नहीं कि इन दो दिनों में हवेली पर कौन-कौन आए थे?' निर्मला इस प्रकार मुस्करा उठी जैसे ब्रह्माण्ड का रहस्य खोलने जा रही थी।

'तेरे दूल्हे राजा आये होंगे, यही कहना चाहती थी न? देख मेरा ज्योतिष सही है न? असत्य मत बोलना। सुजान हंस दी। निर्मला लज्जावनत हो गयी। बात भी सच थी। निर्मला के पति ने सुजान की हवेली में पांच वर्ष बाद कदम रखा था। 'आपका अनुमान सत्य है, लेकिन एक और महात्मा भी आये थे।' निर्मला प्रसन्नमुख बोली।

'महात्मा! उन्हें तू बाद में बताना, पहले यह बता कि तेरे दूल्हे ने

कैसे पदार्पण किया। उसने अपनी भूल स्वीकार की या नहीं अथवा तू यों ही उसकी चिकनी चुपड़ी बातों में आ गयी।' सुजान ने रहस्य जानना चाहा।

निर्मला ने सारी घटना का विवरण दिया। इस बार उसके पति ने बड़ा पश्चाताप किया, रोया और जीवन भर साथ निभाने की सौगन्ध खाई। निर्मला ने सब कुछ विधिवत् सुनाया। सुनकर सुजान गम्भीर हो गई। वह पुरुष जाति से भलीभाँति परिचित थी। वह जानती थी कि निर्मला का पति सुरा-सुन्दरी का शौकीन है। वेश्यावृत्ति में उसने निर्मला के सारे आभूषण गँवा दिए। वह यह भी जानती थी कि जब-जब द्रव्य की आवश्यकता पड़ी, उसने निर्मला के सम्मुख चोंचले दिखाए और कुछ माल ऐंठकर चलता बना, फिर महीनों क्या वर्षों नहीं दिखायी पड़ा। फिर भी निर्मला इतनी भोली थी कि हर बार उसके चकमे में आ जाती थी। उसे नारी जाति पर बड़ी दया आई। विधाता ने उसे सुकोमल, कमनीय और आकर्षक तो बनाया, परन्तु पुरुष ने उसे अपने आमोद-प्रमोद का साधन बना लिया और वह भी कब तक? जब तक उसमें यौवन है। फिर जैसे ही यौवन ढला पुरुष उसकी अपेक्षा नहीं करता।

'निर्मला! लगता है तू फिर उसकी बातों में आ गई।' सुजान ने धीरे से कहा और निर्मला की आँखों में कुछ टटोलने लगी। निर्मला स्वामिनी का स्वभाव भलीभाँति समझती थी। वह बोल पड़ी—'माल-किन! इस बार वह सोने की एक मोहन माला भी दे गया है।'

'अच्छा! तभी फूली नहीं समा रही है, आगे बता, वह अब कब आयेगा?'

'आज फिर आने को कहा है।'

'ठीक! तो चलकर तेरी विदाई की तैयारी करूँ। अच्छा वह महात्मा कहाँ से आए थे?'

'वह अभी गए थोड़े ही हैं। संगीतशाला में आसन लगाए बैठे हैं और हेम के साथ किसी ताल की साधना कर रहे हैं। सच बताऊँ मालकिन!

सारी रात ऐसे अनोखे राग अलापते रहे कि मैं आँगन में बैठी-बैठी ही सो गयी। आँख खुली तो देखा हेम की मृदङ्ग और स्वामी जी के कण्ठ की बाजी लगी हुई है। बड़ा मधुर स्वर है।

'पर वह हैं कौन ?'

'यह तो मुझे ठीक से नहीं मालूम है, हाँ, हेम जी ने कुछ बताया था, मैं भूल गयी।'

'क्यों नहीं, तू अपने बाँके बिहारी के चक्कर में थी न ?' सुजान ने चुटकी ली। निर्मला लजा गई।

बग्घी सुजान की हवेली के सामने रुकी। निर्मला ने उतर कर स्वामिनी को उतारा और पीछे-पीछे चली। बारादरी में सुजान ने पैर रखा ही था कि उसे मृदंग पर सुमधुर ताल और सुरीला कण्ठ सुनाई पड़ा। सुजान यद्यपि थकी-मांदी थी तथापि संगीत की ध्वनि सुनते ही उसके ही पाँव थिरक उठे। वह सीधे संगीत कक्ष में घुसी। सामने का दृश्य देखकर आश्चर्य में पड़ गयी। जिन्हें निर्मला महात्मा समझ रही थी, वह उसके बालपन के संगीत गुरु केशवानन्द थे जिनके स्वरों पर हेम मृदंग से ताल दे रहा था। सुजान ने मन ही मन गुरुदेव का नमन किया और एक कोने में चुपचाप बैठ गई। जिस राग की साधना चल रही थी सुजान के लिए वह नूतन था। केशवानन्द की वृद्धावस्था में भी जो स्वर माधुरी उनके सुरीले कण्ठ से निःसृत हो रही थी, सुजान उसी में जैसे खो गई। हेम का मृदंग ऐसी अनोखी संगत दे रहा था कि मंत्र-मुग्ध हो जाना स्वाभाविक था। भूखी-प्यासी थकी सुजान भी फूली नहीं समा रही थी। गीत की पंक्तियों के साथ-साथ स्वर सप्तकों के बोल जैसे अद्भुत रस घोल रहे थे। कुछ समय के पश्चात् संगीत रुका। हेम ने सुजान को [illegible] ने कहा—'बाबा जी ! यही राजनर्तकी सुजान हैं जिन्हें लास्यनृत्य [illegible] । दिल्ली के दीवाने-आम में इनके चरण के [illegible]

[illegible] का हृदय धक-

धकाने लगा। बाबा को लगा जैसे सुजान को कहीं देखा हो। पर ठीक-ठीक याद न आया। कितने ही लोग उनसे संगीत सीख चुके थे। वे पहले गृहस्थ थे, अब संन्यासी और उनके जीवन का एकमात्र व्यसन था संगीत। सितार पर सूर के पदों के गायन की उनको दक्षता थी। जब पर्याप्त समय तक स्मृति सागर में डूबने उतराने पर भी केशवानन्द सुजान को पहचान न सके तो सुजान ने राहत की साँस ली। हेम ने मौन भङ्ग करते हुए कहा —'हम लोग कल से यहीं पर लास्य के ताल-लय की स्वर साधना में लगे हैं और लगभग भूमिका तो बँध चुकी है अब केवल देर है तो आपकी।' सुजान ने सिर नीचा किए हुए उत्तर दिया—'हेम जी ! लास्य मे यौगिक साधना अनिवार्य है और कम से कम मैं तो·····'

केशवानन्द ने बात काटकर कहा—'बेटी ! हेम से तुम्हारी योग्यता और क्षमता का परिचय प्राप्त कर चुका हूँ। सबसे बड़ी बात तो यह है बेटी ! कि मैं महाकालेश्वर के प्रधान पुजारी को वचन दे चुका हूँ कि अब की बार महाकुम्भ के अवसर पर लास्य नृत्य का आयोजन अवश्य होगा। मेरे ऊपर विश्वास रखो बेटी ! मैं तुम्हें तैयार कर लूँगा।' सुजान कुछ बोले कि इसी बीच निर्मला बोल पड़ी—'बाबा जी ! मालकिन सवेरे से केवल जल पीकर अभी तक चल रही हैं। अब आज्ञा हो तो इन्हें कुछ·····'

'हाँ, हाँ बेटी ! जाओ, खा-पीकर विश्राम करो।' हम दोनों स्वर साधना कर रहे हैं, सायंकाल तक तुम्हें भी बुला लेंगे।' केशव बड़ी आत्मीयता से बोले और सितार उठाकर उसकी खूँटियाँ ऐंठने लगे। हेम ने मृदंग छोड़कर तबला साधना प्रारम्भ किया। सुजान अन्तःकक्ष मे चली गयी। वह केशवानन्द के विषय मे सोचने लगी। सुजान के पिता संगीत के प्रेमी थे, इसीलिए अपनी एकमात्र लाड़ली बेटी के निए केशवानन्द जैसे कुशल संगीत साधक को उनके परिवार का पूरा व्यय भार वहन करके भी अपनी हवेली के खंड मे रखा था।

सुजान से खाया नहीं गया परन्तु निर्मला ने थोड़ा-बहुत खिला दिया। अपनी स्वामिनी को पान खिलाकर चरण दबाने लगी। शुभ्र

सोचे जा रही थी—केशव के सितार की मन्द ध्वनि तथा हेम के तबला की थाप उसे स्पष्ट सुनायी दे रही थी। क्या सुजान लास्य सीख लेगी? यद्यपि उसकी वर्षों पहले की ऐसी अभिलाषा थी तथापि बिनु गुरु होइ कि ज्ञान? कोई मिला नहीं अब तक और आज जब मिला तो उसके पिता की स्मृति भी ताजी हो आई। कहा जाता है—वेश्या का कोई घर नहीं होता, सगे-सम्बन्धी-भाई-बंधु नहीं होते, परन्तु इस परिभाषा के अनुसार सुजान इस समय वेश्या नहीं कही जा सकती। आनन्द की माँ उसकी माँ हैं, सदाशिव ने उसे पिता से कहीं अधिक दुलार दिया है, सेविका होते हुए भी निर्मला उसकी बहन जैसी है। घर है, द्वार है, धन है, वैभव है, मान-सम्मान है, सब कुछ तो है। एक दिव्य जीवन के लिए जो भी अपेक्षित होता है, वह सब तो सुजान को सहज उपलब्ध है। आनन्द जैसा सखा, दुःख-सुख का साथी, उसकी मान मर्यादा सभी कुछ सुजान पर अर्पित है। वस्तुतः सुजान इस समय राज रानी से किसी भी अर्थ में कम नहीं है। राज्य नहीं, पर राज सुख तो है। निर्मला चरण दबाए जा रही थी और सुजान के विचार अबाध गति से पंख फैलाए अन्तरिक्ष में उड़ रहे थे। वह गर्विता नारी का रूप धारण कर चुकी थी। मन ही मन मुस्कराई तो उसके मुख-मण्डल पर मुस्कान की रेखाएँ उभरने लगीं। विचारों की सरणि का अन्त नहीं दिखा। वह सोचने लगी — आनन्द की माँ उसे आज इस अवस्था में भी अपनी कुलवधू बनाने को तैयार हैं जबकि आज वह कुलवधुओं के सारे लक्षण गवाँ चुकी है। वह न सधवा रही न विधवा, न नारी रह सकी न वारनारी! वह इस समय क्या है? उसका संसार में क्या स्थान हो सकता है? समाज उसे किस रूप में देखे, कानून अथवा राज्य उसका क्या स्वरूप स्थिर करे, इदमित्थ कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। उच्च कोटि के गायक केशवानन्द, प्रसिद्ध मृदंगाचार्य हेमचन्द्र तथा नामी सारंगी वादक सदाशिव उसे सर्व-समर्था समझ रहे हैं, आनन्द उसे अपने हृदय प्रदेश की महारानी बना बैठा है, उसकी माँ उसे परमविदुषी मान रही हैं और उधर रँगीले शाह अपने

। केशव के चरण छुए—'स्वामी जी ! इतना मार्मिक राग
सोचे जा रहो
ज प्रथम वार सुन पाया हूँ, कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं
की थाप उसे
पुण्य भूमि की शोभा वढ़ा रहे हैं ?'
यद्यपि उसके
इस समय संन्यास जीवन चल रहा है। वैसे उज्जयिनी के
कि ज्ञान ?
र मन्दिर में कुछ समय शिव जी को रिझाता हूँ।' केशवानन्द
पिता की
पर लगा त्रिपुण्ड जैसे उनका यथार्थ परिचय दे रहा था। 'वैसे
नहीं होग
क क्या संन्यासी वन पायेंगे। क्योंकि वे जहाँ होंगे उन्हें संसार
अनुसार
तः घेरे रहेगा, यों समझिए वे अपने साथ ही संसार लिए हुए
उसकी
हैं।' केशव के गेरुए वसन से आनन्द के मन में भक्ति भाव पैठ
सेवि
। माँ गोमती का संस्कार तो था ही उसकी स्वयं की निष्ठा वेजोड़
है, ।
जो

'आपके दर्शन से कृतार्थ हो गया भगवन् ! कभी मेरे निवास पर
व
धार कर हमें पुण्यभागी वनावें, अति कृपा होगी।' केशव कुछ कहने ही
ाले थे कि हेम वोल पड़ा—'श्रीमन् ! आज सायं लास्य नृत्य के प्रथम
का प्रारम्भ आपके ही भवन से किया जाए।' फिर स्वामी जी की ओर वड़े गर्व से वोला—'गुरु जी ! ये श्रीमान जी मुगल सम्राट के मीर मुंशी घनआनन्द हैं।' नाम सुनते ही केशव चौंका। उसने घनानंद की स्वर लहरी के विषय में सुना था। वोला—'मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।' के चिन्तक आप ही हैं। वेटा ! मैं भी धन्य हूँ जो तुम्हारे दर्शन कर पाया। तुम्हारे पिता श्री देवकीनन्दन····।' नामोच्चारण मात्र से ही आनन्द विस्मित हो गया—'स्वामी जी आप उन्हें कैसे' 'वेटा ! उन अमर विभूति को कौन नहीं जानता। महाकालेश्वर मन्दिर के मुखद्वार पर शिव के विषपान का चित्रांकन माथुर जी की ही कल्पना थी। लगभग पांच छोटे-वड़े चित्रकार थे, परन्तु शिव जी के मुखमण्डल पर विषपान करते समय जो वेदान्त भाव दिखता है उसकी सीमा को उन्हीं की तूलिका ने स्पर्श किया। वेटा ! ऐसा लगता है नन्दन चित्रकार के अलौकिक चित्र आनन्द के पदों में शब्द चित्र वनकर आज भी सहृदयों को रिझा

रहे हैं। केशव भाव में आ गया था। उसे लगा देवकीनन्दन जैसे उसके सामने ही हैं। बड़ी जिज्ञासा से बोला, 'आनन्द तुम्हारे अतिथि कक्ष का यह चित्र, जिसमें मेनका गोद में सद्यःजात बालिका लिए विश्वामित्र से कन्या को स्वीकार करने की याचना करती है, ऋषि मुँह फेर कर चले जाते हैं। मैंने उस समय देखा था जब मैं संन्यास लेने का निश्चय कर चुका था। मुझे चित्रकार का वह संदेश मूक सा दिया जहाँ स्वर्ग सुख की कामना में माँ ने अपने वात्सल्य को भी ठुकरा दिया। मेनका के मुखमण्डल पर खिंचे भाव सारी गाथा का प्रत्यक्ष दर्शन करा रहे थे। वह चित्र देखे मुझे ३० वर्ष हो गए।'

'भगवन् चित्र तो अभी भी है और रंगों के फीका पड़ जाने से कुछ अस्पष्ट सा दिखता है। आपका स्वागत है, यह कक्ष ही आपका है।' आनन्द ने बड़े अनुराग से केशव को देखा 'बेटा ! तुम कुलीन हो, संस्कार-वान् हो और योग्य पिता के योग्य पुत्र हो। लगता है कला जिसे प्रत्यक्ष न कर पाई, संगीत जिसे प्रत्यक्ष करके भी पकड़ न पाया, उसे तुम्हारे पदों ने हठात् शब्दजाल मे बाँधकर सारे जगत् को कृतार्थ कर दिया। बेटा ! मैं सितार साध रहा हूँ तुम तनिक वही पद सुना दो।' केशव ने याचना के स्वर मे कहा।

'स्वामी जी ! आप के साथ मैं क्या कह पाऊँगा ?'

'वत्स ! मैं सब जानता हूँ। तुम प्रारम्भ करो।'

'कौन सा पद ? भगवन्।'

'मन लेहु पै देहु छटांक नही,'

आनन्द का हृदय इस समय प्रफुल्लित था, इसीलिए जैसे ही पहली पंक्ति होंठों पर आई और केशव ने सितार पर लहर देना प्रारम्भ किया वैसे ही सारा कक्ष तादात्म्य भाव में आ गया। स्वर से स्वर मिले, तार से तार और सर्वत्र एकरसता छा गई। हेम से नही रहा गया। मृदंग घहकी और बूढ़े सदाशिव की कनिष्ठा एवं तर्जनी का भेद अभेद बन गया। कण्ठ स्वर को वाद्य स्वर निहार रहे थे और इन दोनों को ,

कोने में बैठा बहादुर सिंह तथा अभी-अभी आयी निर्मला निहार रही थी। आनन्द पूरे मनोयोग से पद की पंक्तियों को राग पर उतार रहा था। तृतीया पंक्ति के '''घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो''''को तीन-चार बार दुहराता गया, केशव जैसे इस लोक में ही नहीं था, हेम की उंगलियां तबले पर नाच रही थीं और सदाशिव ! जितनी मार्मिकता उसकी सारंगी से ध्वनित हो रही थी उससे कहीं अधिक उसके नेत्रों से बहते अश्रु अभिव्यक्ति कर रहे थे। बहादुर सिंह का पूरा ध्यान आनन्द पर टिका था, सदाशिव के भावभरे आंसू उस ठाकुर की आंखों से निकल पड़े और निर्मला आंचल में मुंह ढांपे ही रो पड़ी। जैसे ही पांचवीं बार आनन्द ने 'घन आनन्द प्यारे सुजान' कहा कक्ष द्वार पर सुजान आ खड़ी हुई। वह जैसे नाटक देख रही थी। भाव में डूबते-उतराते सभीजन लथपथ होकर विश्राम पर पहुंचे और एक-एक कर स्वर मूक बने ही थे कि सबकी दृष्टि सुजान पर गई।

'आओ बेटी ! रस की धारा बह चली है, आनन्द के पद में जादू है। तू चूक गयी, लगता है अभी आयी है।' केशव हर्षातिरेक में बोला। 'हां बाबा !' कहती हुई सुजान कक्ष में आकर बैठ गयी। 'आनन्द के स्वर में बड़ा दर्द है बेटी ! ऐसा लगता है कि इन पदों की तह तक पहुंचना साधारण आदमी के बस की बात नहीं। मुझे तो आज पता चला कि श्रीमान् जी प्रसिद्ध चित्रकार देवकीनन्दन माथुर के सुपुत्र हैं। ये शायद तुम्हीं से मिलने आये हैं। चलो हेम हम लोग थोड़ा विश्राम कर लें।' केशव उठने लगा। 'स्वामी जी ! बैठिए, आपकी वाणी में ब्रह्मानन्द का रस है। ऐसा सत्संग भी तो भाग्य से ही मिलता है।' आनन्द ने टोका। 'नहीं आनन्द जी ! अभी हमें आपके यहां संगत की तैयारी करनी है। अधिक देर बैठ जाने से वहां का कार्यक्रम जम नहीं पायेगा। हां, सायंकाल वहां के लिए आग्रह कर दीजिए।' कहते हुए हेम उठ पड़ा हुआ। 'यदि ऐसा है तो भाई हेमचन्द्र ! स्वामी जी को लेकर मेरी बग्घी में बैठकर मेरे भवन पर ही पहुंच कर आतिथ्य

स्वीकार करें। हम भी थोड़ी देर में आ जायेंगे।' कहकर आनन्द ने बहादुर सिंह को पुकारा और उसके आने पर बोला, 'बहादुर! इन अतिथियों को लेकर घर पहुँचो और इनके स्वागत-सत्कार का यथोचित प्रबन्ध करो।' 'जैसी आज्ञा', *कहकर बहादुर सिंह स्वामी जी, हेम और सदाशिव को लेकर बाहर निकल गया। सबके चले जाने पर कक्ष अचानक सूना हो गया।*

सुजान धीरे से उठी और अपने अन्तःकक्ष की ओर चली। कक्ष में आनन्द को बिठाकर उसने निर्मला को आवाज दी—'निर्मला! आनन्द के लिए भोजन का प्रबन्ध करो, देखो, कुछ फल भी मँगा लो और हाँ पहले इन्हें जलपान ...। अच्छा तुम महराजिन से कहकर भोजन का प्रबन्ध कराओ, जलपान मैं स्वयं लाती हूँ।' कहकर सुजान कक्ष के बाहर जाने लगी, तभी आनन्द बोल पड़ा—'सुजान! मैं थका हूँ, कुछ खा-पी नहीं पाऊँगा वैसे भी पथ्य चल रहा है और वैद्य जी की आज्ञा बिना·····' सुजान ने बात काट दी—'मैं कुछ वैसा ही खिलाऊँगी, इसकी चिन्ता तुम्हें नहीं करनी है।' और एक मुस्कान बिखेर कर अन्तर्धान हो गयी। आनन्द के मन में गुदगुदी-सी हुई। वह आँखें मूँदे किसी मधुर स्मृति में खो गया।

सुजान ने आनन्द को जलपान कराया और वहीं पास में बैठ गयी। *सहसा सुजान पूछ बैठी*—'अच्छा यह बताओ, मेरे पीछे-पीछे लाल किले क्यों दौड़े गए?' 'प्रिये! तुम्हारा अनादर न हो, इसलिए मैं गया था और वहाँ काफी देर तक *प्रतीक्षा करने* पर भी शाह से मिल न सका। जब लीला ने तुम्हारे जाने की बात कही तो मेरी जान में जान आयी। हाँ, जिस अपमान का मुझे भय था वह होकर ही रहा।'

'तुम्हें कैसे मालूम?' सुजान ने प्रश्न किया।

'लीला ने बड़े संकोच से बताया।'

'तुम लीला से कहाँ मिले?'

'वह दीवाने खास के बाहर उद्यान में बैठी थी। वहीं निलज्जन-

दिखी मुझे। उसने स्वयं ही बताया और मैं खून का घूंट पीकर रह गया।' 'अच्छा हुआ शाह से तुम्हारी भेंट नहीं हुई।' सुजान इतना ही कह पायी कि निर्मला भोजन की थाली लेकर आ गई। आनन्द ने भोजन करना प्रारम्भ किया, सुजान पंखा झलने लगी तो आनन्द ने कहा—'यह क्या कर रही हो ?'

'मैं जो कर रही हूं, करने दो।' कहकर सुजान अपना कार्य करती रही। उसे असीम सुख की अनुभूति हो रही थी। भोजन के उपरान्त पान खाकर जैसे ही आनन्द लेटा, सो गया। दिन भर बहुत थक चुका था। सुजान भी वहीं फर्श पर लेट गयी उसके मानस में शान्ति थी। वह आनन्द को पाकर सब कुछ भूल जाती थी। वह यही सोच रही थी वह आनन्द की एकमात्र नारी और आनन्द उसका एकमात्र पुरुष था। वही बीच-बीच में आनन्द की ओर देख लेती। सुख का संसार और चिरवैभव का भण्डार उसके सामने बिखरा पड़ा था और वह दोनों हाथ से उस अनन्त राशि को बटोर रही थी। लगता—मानो प्रेम-रस छलक रहा था, अनन्य भाव अभिनय कर रहे थे और घोर हताशा में डूबी वासना दूर खड़ी दम तोड़ रही थी।

संध्या के पूर्व आनन्द की हवेली में संगीत लहरी लहरा उठी। प्रारम्भ में आनन्द ने अपना दर्द भरा पद—'कछु नेह निवाहनो जानत ना तो सनेह की धार मे काहे धँसे'—गाया। केशव सितार के तारों में जैसे खो गया। हेम ने मृदंग पर अधिकार जमाया और सदाशिव की सारंगी जैसे हृदय को झकझोर रही थी। सुजान जगज्जननी पार्वती के वेष में बैठी झूम रही थी। माँ गोमती आज हर्ष से फूली नहीं समा रही थीं। उनकी आँखें डबडबा आई थीं। अपने पुत्र की इस कला पर तो रीझी ही थीं साथ ही यह भी विचारे जा रही थीं कि आज आनन्द के पिता होते तो फूले न समाते। कारण भी स्पष्ट था—वस्तुतः वे कला पारखी थे। चित्र और संगीत उनका स्वभाव बन चुके थे और इसके विपरीत गोमती नारी होते हुए भी इन सबसे दूर ही रहना पसन्द करती थीं। उनकी दृष्टि में ये सब निठल्लों के व्यसन हैं। परन्तु आज वास्तविकता उनके समक्ष थी, उनकी आँखों से अश्रु-प्रवाह हो रहा था। रह-रहकर पार्वती की मुद्रा में बैठी सुजान को निहारे जा रही थीं। आँगन में नृत्यायोजन था और बरामदे में सगत लगी थी। सेवक-सेविकाओं के अतिरिक्त दो-एक विशिष्ट श्रेष्ठी वहाँ विराजमान थे। निर्मला का पति भी सेवा-कार्य में लगा था।

'लास्य' की भूमिका मे वाद्य-यंत्र झंकृत हुए। संकेत पाकर सुजान उठी। सर्वप्रथम उसने गोमती के चरण छुए, आशीर्वाद प्राप्त किया, पुनः क्रम से केशव, सदाशिव, हेम तथा आनन्द का अभिनन्दन करके प्राङ्गण में मन्द गति से उतरी। ऋषि कन्या-सी वेष-भूषा, बँधे हुए जूड़े में कदम्ब-पुष्प मालिका, मुखमण्डल पर चित्र-विचित्र कलाकारी, बिम्बाफल-से रंगे ओष्ठ, तनी हुई सुघर ग्रीवा, उभरे हुए उरोज, कटि में मूँज-मेखला और

घुटनों तक चुनरी, चरणों में महावर, सब मिलकर सुजान को साक्षात् पार्वती की प्रतिमा सिद्ध कर रहे थे। आज सुजान अपने जीवन की बहुत बड़ी साध पूरी करने जा रही थी। उसने मन ही मन माँ पार्वती का स्मरण किया और अंग-संचालन में तत्पर हुई। वह सहसा थिरक उठने का नृत्य नहीं था। इसमें बड़ी सावधानी बरतनी थी। वाद्य-यंत्र पहले से सधे थे। सुजान ने आनन्द को निहारा मानो अपने शङ्कर के दर्शन कर रही हो। उसने नृत्य-मुद्रा में सबसे पहले पूरे आँगन की परिक्रमा की और मध्य में केन्द्र स्थिर करके चरण के घुंघरुओं को सतर्क किया। मन्द-मन्द ध्वनि में घुंघरू बजे और सुजान ऐसे टटोल-टटोल कर पांव रखती गई कि आंगन भी झूम उठा। उसका ध्यान सारंगी पर लगा था और आज तो सचमुच सदाशिव जैसे गन्धर्वलोक से उतरा हो। इतनी मार्मिकता से रागिनी फूटती थी मानो अन्तर को छू-छूकर ही रह जाती हो। मृदंग भी मानो हेम के इशारे पर नाद दे रहा था। हेम की उँगली का स्पर्श कोई नहीं देख रहा था, केवल नाद ही सबको विस्मय में डाल रहा था। आचार्य केशव सितार के तारों में तैर रहे थे। 'नी' और 'सा' पर तो वह ऐसे उंगलियाँ दौड़ाते थे, जैसे कोई आनन्द की सरस सीमा को छू रहा हो। सभी मंत्र-मुग्ध-से अद्भुत राग-रस का पान कर रहे थे। सहसा नाद का दूसरा दौर प्रारम्भ हुआ। सुजान की पदचाप धीरे-धीरे बढ़ी और वह इस प्रकार अंगों को मुखर कर रही मानो स्वर्ग से मेनका उतर आयी हो।

केशवानन्द लास्य का पटु वादक था। वह बीच-बीच में ताण्डव ध्वनि का भी आभास देता था और उस समय सुजान का चौंककर थिरकना इतना आकर्षक तथा स्वाभाविक लगता था कि लोग बिना मूल्य बिक उठे थे। गोमती की सुजान के प्रति श्रद्धा जागी वे मन ही मन अपने सौभाग्य पर इतराने लगीं। आनन्द अपलक देखता रहा। वाद्य-यन्त्र पूर्ण सजग हो उठे। सुजान यंत्र बन गयी। घुंघरुओं की प्रतिध्वनि रस-संचार कर रही थी। नृत्य की गति बढ़ी। वाद्यों में उसने स्वयं को एकाकार कर लिया।

कहते हैं तान से तान, भाव से भाव एवं स्वर में स्वर मिलकर जिस तादात्म्य का प्रत्यक्ष कराते हैं वही तो जीव और ब्रह्म का मिलन है। आचार्य केशव इसे कई बार साध चुके थे किन्तु आज तो सुजान ने मानो इस साधना को पूर्णाहुति ही दे दी। केशव ने ताण्डवी मुद्रा का एक गंभीर झटका दिया जिसकी प्रतिक्रिया सुजान पर बड़ी विचित्र हुई। वह स्तम्भिता, भयभीता-सी एक बार मन्द-मन्द, दबे चरणों से केन्द्र की परिक्रमा करने लगी। तदनन्तर केशव ने यथार्थ लास्य का संकेत देकर सितार के तारों को—'रे ग म' पर ध्वनित किया। स्वर में डूबे स्वर ब्रह्मनाद बनकर आँगन में थिरक उठे।

इस प्रकार लगभग ढाई घण्टे लास्य का यह क्रम चला। धीरे-धीरे स्वर थमे और केशव ने दौड़कर सुजान को गोद में उठा लिया और कान में बोले, 'बेटी ! सच बता, क्या तू स्वर्णकार मदनमोहन की लाड़ली सुकन्या तो नहीं है ? सुजान कुछ कहे कि इसके पूर्व ही केशव ने कहा—'बिटिया ! तुम्हारे ऊपर महाकालेश्वर दयालु हैं। तू इस भारत देश की एक मात्र लास्य नर्तकी बनेगी, यह मेरा दावा है।' सुजान के नेत्र लज्जा से झुक गये। उसे विश्वास नहीं था कि वह इस नृत्य पर थिरक पायेगी परन्तु जब एक-एक करके सबने उसकी प्रशंसा की तो वह जैसे किसी बोझ से दब गयी। गोमती ने उसे अपनी गोद में बैठाया और बड़े स्नेह से उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली—'बेटी ! आज जो कुछ मैंने अपनी आँखों से देखा है वह साक्षात् होकर भी स्वप्नवत् ही लग रहा है। ऐसा दृश्य मैंने आज तक नहीं देखा। बेटी ! तू अब मेरी आँखों से ओझल न हो, यही कामना है।' 'माँ जी ! यह सब तो आपकी ममता का ही प्रसाद है अन्यथा मैं इसके योग्य कहाँ ? सुजान अपार स्नेह पाकर धन्य हो गई थी। उसकी आँखें अपने आनन्द को ढूंढने में लग गईं। आनन्द वहाँ से उठकर केशव आदि को अतिथि कक्ष में ले आया और सेवकों को आवश्यक निर्देश देकर अपने शयनकक्ष में जा लेटा। उसे सुजान की चिन्ता व्याप उठी।

आनन्द के मानस-पटल पर कई प्रकार के विचार उभरे। वह सोचता रहा—सुजान एक अमर विभूति है। अभी तक उसने सुजान को दादरा, ठुमरी, यमन केदारा असावरी पर थिरकते देखा था और आज लास्य का मात्र आभास देखकर वह दंग रह गया। सुजान उसकी दृष्टि में उर्वशी है, उसे लगा वह देवांगना किसी क्षण भी पंख लगा कर उड़ सकती है। वह आनन्द के पास रुकी रहे सर्वथा असम्भव है। उज्जयिनी में लास्य-नृत्य होगा, वहाँ अनेकानेक नरेश उसका नृत्य देखेंगे, फिर····। इस प्रकार आनन्द के मनोरथ पर पानी फिर सकता है। क्या वह सुजान को बचा सकता है ? कदापि नहीं। उसमें रूप नाम की कोई वस्तु नहीं केवल काव्य-कला मात्र कब तक सुजान को रिझा पायेगी। सुजान में सब कुछ है, आकर्षण यौवन, नृत्य कला, विद्वत्ता, यों समझिए, एक व्यक्ति को जो कुछ चाहिए सभी कुछ। बस यह ध्यान आते ही आनन्द ईर्ष्या से भर गया। लगा, जैसे उसके विमल मानस-सरोवर में किसी ने पत्थर फेंक कर घुटने भर नीचे जो कीचड़ था, उसे ऊपर के सतह पर ला दिया। उसके चित्त में हीन भावना घर कर गई। वह सुजान के योग्य नहीं। वस्तु, सुजान उस पर तो लट्टू होने से रही। रहा, उसके प्रति वह जो भी स्नेहिल भाव दिखा रही है, उसमें भी कोई रहस्य ही है और जहाँ रहस्य हो वहाँ यथार्थ टिक ही नहीं सकता। सच है, पुरुष कभी संदेह-भाव से ऊपर उठ ही नहीं पाता। किसी प्रकार एक भ्रम दूर हुआ नहीं कि अनेक मानस-क्षितिज पर मण्डराने लगते हैं आनन्द भी आखिर पुरुष ही था।

सहसा सुजान की पद-चाप सुनाई पड़ी। आनन्द मुँह फेरे लेटा रहा। सुजान इस समय वस्त्र-परिवर्त्तन करके एक गृहिणी के रूप में आनन्द के सामने खड़ी थी और आनन्द जैसे विरक्त ! सुजान शैय्या के समीप पहुँची।

'आनन्द ! लगता है तुम्हें यह नृत्य जँचा नहीं अन्यथा तुम्हारे मुख से दो शब्द सुनने के लिए सुजान बेचैन न होती।' सुजान का उत्साह

मन्द हो गया। वह बड़ी कठिनाई से खड़ी रह सकी, परन्तु आनन्द ने उसकी ओर मुँह ही नहीं घुमाया। सुजान को एक-एक पल खलने लगा। कहा—'आनन्द ! तुम बोलोगे ही नहीं, देखो तुम्हारे सामने कौन है ?' इतने पर भी जब आनन्द ने करवट न बदली तो सुजान का धैर्य टूट गया। वह दूसरी ओर जाकर झुककर देखने लगी कि चौंक उठी। आनन्द रो रहा था। उसकी आँखों से अजस्र अश्रुधारा बह रही थी। सुजान बैठ गयी। आनन्द का सिर अपनी गोद में लेकर बोली—'प्रियतम ! यह रुदन किस लिए ? क्या मुझसे कोई अपराध ?' आनन्द फफक कर रो पड़ा। सुजान के लिए यह मनःस्थिति बड़ी विलक्षण थी। जैसे ही बोली —'आनन्द मुझसे क्या भूल ?' वैसे ही स्वयं विलख उठी। इसलिए नहीं कि वह अबला थी वरन् इसलिए कि उसमें सारी विशेषताओं के रहते हुए भी नारी-भाव उसका साथ नहीं छोड़ पाया था।

आज स्थिति ही कुछ वैसी थी। आज जब वह रोई तो केवल इसलिए कि आज उसने अपना यथार्थ प्राप्त कर लिया। अभीष्ट की सिद्धि में सुधा है। सुजान को रोते देख आनन्द उठ बैठा और उसके आँसू पोंछने लगा। सुजान बोली —'तुम रोए क्यों ?' आनन्द गम्भीर हो गया— 'देखो सुजान ! मैं नहीं चाहता कि तुम किसी और की आराध्या बनो। मेरे मन में भगवान् के स्थान पर तुम्हीं हो और यदि तुम न रहीं तो''''तो मुझे आत्महत्या।' सुजान ने आनन्द के मुँह पर अपनी हथेली रख दी। वह जानती थी आनन्द भावुक है, कुछ भी सोचने अथवा कर डालने में उसे देर न होगी। वह धीरे से बोली—'पर आनन्द ! यह अद्भुत धारणा तुमने कैसे बना ली ? क्या मेरे व्यवहार से ऐसा कुछ स्पष्ट हुआ अथवा मेरे प्रति किसी और के''''।'

'सुजान ! मेरी हृदयेश्वरी ! तुम्हारी आश्चर्यमयी अलौकिक कला ही मेरे इस सन्देह की पुष्टि कर रही है।'

'कला ?'

'हाँ नृत्यकला।'

'पर वह कैसे ?'

'सुनो सुजान ! तुम्हारी इस कला पर रीझे बिना कोई रह नहीं सकता, वही मेरे लिए घातक सिद्ध होगा। मैं यही सोच-सोच कर पीड़ित हो रहा हूँ। आज जो छवि मैंने देखी है उससे मैं स्वयं से ईर्ष्यालु हो चला हूँ।' सुजान हँस पड़ी, हँसती रही। उसे आनन्द के कवि हृदय में बड़ा आकर्षण दिखा। वह पुनः हँसी और बोली, 'मेरे भोले आनन्द ! सुजान पर संसार मरता रहा, पर सुजान अपने आनन्द पर मर मिटी, फिर भी उसे विश्वास नहीं। शायद उसे वेश्या समझकर.....' सुजान का चेहरा उतर गया। जैसे चढ़ी हुई घटा गगनाङ्गन से अकस्मात् लुप्त हो जाती है अथवा जैसे बादलों में चन्द्र छिप जाए ठीक वैसे ही सुजान का सारा उत्साह भंग हो गया। आनन्द को उसकी मनःस्थिति का ध्यान हो आया, उसने भीत स्वर में कहा—'सुजान ! मेरी भावनाओं का अन्यथा अर्थ न लगाओ। तथ्य यह है कि हम दोनों इतने समीप आ गये हैं कि इसमें रञ्चमात्र का भी व्यवधान असह्य होगा। रहा विश्वास ! मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं तुम्हें कभी भी वह नहीं समझा, जिसकी ओर तुम बार-बार संकेत करती रहती हो। तुम महान् हो, तुम्हारी ऊँचाई का स्पर्श मुझ जैसे अकिञ्चन के वश का नहीं। यही मेरी लाचारी, दुर्बलता तथा हीनता है और पुरुष होने के नाते मैं इससे तभी मुक्त हो सकता हूँ जब.....'

'हाँ-हाँ बोलो, रुक क्यों गए ?' सुजान चौंककर बोली। वह समझ गयी कि अगले वाक्य में आनन्द अपने अन्तर्भावों को व्यक्त करने वाला है।

'जब मुझे यह विश्वास हो जाएगा कि तुम आमूल-चूल मेरी हो, केवल मेरी और वह भी तभी हो सकता है जब.....' आनन्द पुनः रुका परन्तु सुजान सजग थी—'जब मैं आनन्द के पुत्र की जननी बन जाऊँ ? यही न ?' आनन्द चौंका नहीं, केवल इस बात पर हर्षित हो उठा कि सुजान उसके अन्तर की कामना बारीकी से समझ गयी है। 'यह भी

सम्भव है आनन्द !' सुजान उठ खड़ी हुई। 'संसार में सब कुछ सम्भव है।' कहते हुए उसने आनन्द का हाथ पकड़ कर उसे उठाया और कक्ष से बाहर आती हुई बोली, 'देखो ! आनन्द ! तुम्हारे अतिथि कक्ष में देवयानी का दाहिना हाथ थामे ययाति का बड़ा ही मन-मोहक चित्र है। तुम्हारे बलिष्ठ हाथों में भी मेरा दाहिना हाथ है। इसे आजीवन निभाना होगा। मैं अब नाचकर जीविकोपार्जन करने से रही। अब तो तुम्हीं मेरे आधार हो, स्वामी हो, सब कुछ हो। इसका विरवास प्राप्त करने के लिए तुम जो भी विधि-निर्देश करोगे तुम्हारी सुजान उसका अक्षरशः पालन करेगी। आनन्द ! समर्पण कोई सस्ती वस्तु नहीं।' दोनों भोजन कक्ष में पहुँच गये। आनन्द भोजन करने लगा। सुजान पंखा झल रही थी। वह अपने निश्चय पर अटल, अडिग थी और उसके अन्तर में किसी प्रकार का भ्रम-संदेह नहीं पैठ पाया था। उसने संकल्प कर लिया—आनन्द के मन का भी भ्रम दूर करना पड़ेगा। उसे यह भी ज्ञात था कि यह संदेह कैसे मिटेगा। सुजान तो नर्तकी, उस पर विश्वास ! बड़ी कठिन पहेली थी, समाधान ढूँढ़ना अनिवार्य हो गया।

भोजनोपरान्त आनन्द अपनी शैय्या पर लेटा ही था कि नाना विचारों में खो गया। कब नींद आ गयी, वह स्वयं भी नहीं जान पाया। इधर भोजनादि के बाद सुजान गोमती के कक्ष में गयी और उनके चरण दबाने लगी। गोमती उठ बैठी—'अरे ! थकी तू है और चरण मेरे दाब रही है। छोड़ दो।'

'नहीं माँ ! सेवा करने में श्रम कम सुख अधिक मिलता है। मुझे उससे वंचित न करो।' कहकर सुजान ने धीरे से माँ को लिटा दिया और चरण दबाने लगी। स्नेह का स्पर्श पाकर गोमती निद्रामग्न हो गयीं। सुजान ने उन्हें चादर उढ़ा कर ठीक से सुलाया और दबे पाँव आँगन, आँगन से बरामदा और बरामदे से आनन्द के शयन कक्ष की ओर मुड़ी।

आज प्रथम बार सुजान को प्रतीत हुआ—जैसे वह अभिसारिका

'पर वह कैसे ?'

'सुनो सुजान ! तुम्हारी इस कला पर रीझे विना कोई रह नहीं सकता, वही मेरे लिए घातक सिद्ध होगा। मैं यही सोच-सोच कर पीड़ित हो रहा हूँ। आज जो छवि मैंने देखी है उससे मैं स्वयं से ईर्ष्यालु हो चला हूँ।' सुजान हँस पड़ी, हँसती रही। उसे आनन्द के कवि हृदय में बड़ा आकर्षण दिखा। वह पुनः हँसी और बोली, 'मेरे भोले आनन्द ! सुजान पर संसार मरता रहा, पर सुजान अपने आनन्द पर मर मिटी, फिर भी उसे विश्वास नहीं। शायद उसे वेश्या समझकर.....' सुजान का चेहरा उतर गया। जैसे चढ़ी हुई घटा गगनाङ्गन से अकस्मात् लुप्त हो जाती है अथवा जैसे बादलों में चन्द्र छिप जाए ठीक वैसे ही सुजान का सारा उत्साह भंग हो गया। आनन्द को उसकी मनःस्थिति का ध्यान हो आया, उसने भीत स्वर में कहा—'सुजान ! मेरी भावनाओं का अन्यथा अर्थ न लगाओ। तथ्य यह है कि हम दोनों इतने समीप आ गये हैं कि इसमें रञ्चमात्र का भी व्यवधान असह्य होगा। रहा विश्वास ! मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं तुम्हें कभी भी वह नहीं समझा, जिसकी ओर तुम बार-बार संकेत करती रहती हो। तुम महान् हो, तुम्हारी ऊँचाई का स्पर्श मुझ जैसे अकिञ्चन के वश का नहीं। यही मेरी लाचारी, दुर्बलता तथा हीनता है और पुरुष होने के नाते मैं इससे तभी मुक्त हो सकता हूँ जब.....'

'हाँ-हाँ बोलो, रुक क्यों गए ?' सुजान चौंककर बोली। वह समझ गयी कि अगले वाक्य में आनन्द अपने अन्तर्भावों को व्यक्त करने वाला है।

'जब मुझे यह विश्वास हो जाएगा कि तुम आमूल-चूल मेरी हो, केवल मेरी और वह भी तभी हो सकता है जब.....' आनन्द पुनः रुका परन्तु सुजान सजग थी—'जब मैं आनन्द के पुत्र की जननी बन जाऊँ ? यही न ?' आनन्द चौंका नहीं, केवल इस बात पर हर्षित हो उठा कि सुजान उसके अन्तर की कामना बारीकी से समझ गयी है। 'यह भी

सम्भव है आनन्द !' सुजान उठ खड़ी हुई। 'संसार में सब कुछ सम्भव हैं।' कहते हुए उसने आनन्द का हाथ पकड़ कर उसे उठाया और कक्ष से बाहर आती हुई बोली, 'देखो ! आनन्द ! तुम्हारे अतिथि कक्ष में देवयानी का दाहिना हाथ थामे ययाति का बड़ा ही मन-मोहक चित्र है। तुम्हारे बलिष्ठ हाथों में भी मेरा दाहिना हाथ है। इसे आजीवन निभाना होगा। मैं अब नाचकर जीविकोपार्जन करने से रही। अब तो तुम्हीं मेरे आधार हो, स्वामी हो, सब कुछ हो। इसका विश्वास प्राप्त करने के लिए तुम जो भी विधि-निर्देश करोगे तुम्हारी सुजान उसका अक्षरशः पालन करेगी। आनन्द ! समर्पण कोई सस्ती वस्तु नहीं।' दोनों भोजन कक्ष में पहुँच गये। आनन्द भोजन करने लगा। सुजान पंखा झल रही थी। वह अपने निश्चय पर अटल, अडिग थी और उसके अन्दर में किसी प्रकार का भ्रम-संदेह नहीं पैठ पाया था। उसने संकल्प कर लिया— आनन्द के मन का भी भ्रम दूर करना पड़ेगा। उसे यह भी ज्ञात था कि यह संदेह कैसे मिटेगा। सुजान तो नर्तकी, उस पर विश्वास ! बड़ी कठिन पहेली थी, समाधान ढूँढ़ना अनिवार्य हो गया।

भोजनोपरान्त आनन्द अपनी शैय्या पर लेटा ही था कि नाना विचारों में खो गया। कब नींद आ गयी, वह स्वयं भी नहीं जान पाया। इधर भोजनादि के बाद सुजान गोमती के कक्ष में गयी और उनके चरण दबाने लगी। गोमती उठ बैठी—'अरे ! पगी तू है और चरण मेरे दाब रही है। छोड़ दो।'

'नहीं माँ ! सेवा करने में श्रम कम सुख अधिक मिलता है। मुझे उससे वंचित न करो।' कहकर सुजान ने धीरे से माँ को लिटा दिया और चरण दबाने लगी। स्नेह का स्पर्श पाकर गोमती निद्रामग्न हो गयीं। सुजान ने उन्हें चादर उढ़ा कर ठीक से सुलाया और दबे पाँव आँगन, आँगन से बरामदा और बरामदे से आनन्द के शयन कक्ष की ओर मुड़ी।

आज प्रथम बार सुजान को प्रतीत हुआ—जैसे वह अभिसारिका

ी और अपने नायक से मिलने संकेत स्थल की ओर जा रही हो। अतीत उसकी आंखों के सामने चित्रपट की ओर घूम गया। फिर वर्तमान स्थिति को सोच अंग-अंग में स्फुरण होने लगा। वह जानती थी यह क्या है, इसका परिणाम क्या होगा? वह समाज जिसकी दृष्टि में वह पहले से गिरी हुई है, इसके अनन्तर किस इतिहास की सृष्टि करेगा? पीढ़ियाँ क्या मूल्यांकन करेंगी? यह सुजान को अज्ञात नहीं था, फिर भी उसके चरण आनन्द के परम एकान्त कक्ष की ओर बढ़ते ही गए। देहली पर सुजान रुकी—आनन्द घोर निद्रा में था। सुजान दूर से आनन्द में अपना शिव देखने लगी। सचमुच वह शिव है कामजयी। अचानक सुजान की इच्छा जुगुप्सा में बदल गयी वह झटके के साथ अतिथि कक्ष की ओर मुड़ गयी।

अतिथि कक्ष उस दिन ऐतिहासिक ढंग से सजाया गया था। ऊपर टंगे हुए झाड़ फानूस चारों ओर प्रकाश फैला रहे थे जिनमें भित्ति चित्र शुभ्र-ज्योत्स्ना में एकाकी मेघ की भांति झिलमिला रहे थे। सुजान अब अन्धकार से प्रकाश में आ गयी। चित्रों पर दृष्टि जाते ही वह एक चित्र पर केन्द्रित हो गयी। यहां शिव ध्यानावस्थित हैं और उनके बगल में पार्वती बैठी हैं। पार्वती के मुख पर खिंचे भाव यही व्यक्त कर रहे थे कि नारी के लिए पुरुष का ध्यानयोग असह्य है वह भी परम एकान्त में और भी खलता है। यह चित्र अन्य चित्रों से भिन्न था आकर्षक भी। सुजान निर्निमेष देख रही थी तब तक किसी की पदचाप सुनाई पड़ी, मुड़ कर देखा केशवानन्द! वह भी पास आकर वही चित्र देखने लगा- कुछ स्मरण करके बोला—'बेटी! यह चित्र उत्कल नरेश के प्रधान चित्रकार विधुभूषण पाणिग्रही ने बनाया था। विधु मेरे पास सितार सीखता था। यहां इस चित्र में इसका अर्थ अस्पष्ट है परन्तु विधु ने मुझे विधिवत् समझाया था। इसे आनन्द के जन्मोत्सव के उपलक्ष में माथुरजी ने अङ्कित कराया था।

'बाबा !' सुजान जिज्ञासा से बोली—'इस चित्र में कौन-सा अर्थ अस्पष्ट है ?'

'बेटी ! जो बात तू स्वयं समझ रही है, उसे बाबा के मुख से क्यों सुनना चाहती है ?'

'नहीं बाबा, ऐसा नहीं । मैं पूरी तरह चित्रकार के आशय से अवगत नहीं हो पायी हूँ, कृपा कर·····'

'बेटी ! *पार्वती जननी बनने के लिए महादेव से·····*' केशव की आँखें नीची हो गईं । वह एक ऐसे सत्य की ओर इङ्गित करने जा रहा था जिसको सुनकर सुजान के चित्त को ठेस पहुँचती ।

'बाबा ! क्या जननी बनना अनिवार्य था ?'

'हाँ बेटी ! कुमार कार्तिकेय के जन्म से विश्व कल्याण होना था और नारी की पूर्णता भी तो तभी है जब वह ममतामयी माँ बन जाती है । बेटी ! माँ में विश्व का आधार अन्तर्निहित है । सृष्टि की अविच्छिन्नता माँ पर ही टिकी है ।' कहते हुए केशव जिधर से आये थे उधर ही चले गये ।

सुजान की दृष्टि पुनः उसी चित्र पर गड़ गई । षणमुख शिशु ने पार्वती की मुद्रा में अन्तर्द्वन्द्व के ऐसे-ऐसे सौंधे भाव उरहे थे कि सुजान की आँखें भर आईं, गद्‌गद कण्ठ से बोली—'सच है, माँ तू ही सत्य है ।' सुजान को कालिदास का 'कुमार-सम्भव' याद आया और····और-'तथा समक्षदहता मनोभवं पिनाकिना भग्न मनोरथा सती, निनिन्द रूप हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।' यह छन्द मन ही मन दुहराती हुई सुजान कक्ष के बाहर आई । जैसे प्रकाश से अन्धकार की ओर जा रही हो, सुजान की वही स्थिति हो चली थी । बारादरी में बहादुर सिंह बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था । सुजान को देखते ही उठ खड़ा हुआ । 'बहूरानी ! अभी तक····!' यही वह पाया था कि शब्द जैसे कण्ठ में ही अटक गए । 'बहूरानी' सम्बोधन सुजान को बड़ा प्रिय लगा 'हाँ ठाकुर ! मैं अतिथि कक्ष के चित्रों का दर्शन कर रही थी ।' कहती हु

आँगन की ओर बढ़ गयी । आनन्द के कमरे में एक एकान्त कक्ष में नर्तकी और उसका पति भी दीपक के प्रकाश में दीवार की भीतों पर रहे थे । रह-रहकर दोनों का मधुर हास कक्ष में गूँज उठता था । सुजान के कर्णपट पर भी वह उन्मुक्त हास टकराया । सुजान ने एक ठंडी साँस ली । वह आँगन के सामने बरामदे में खड़ी हो गयी । आकाश मेघाच्छन्न था । रह-रह कर गर्जना मुखर हो रही थी । सुजान आँगन में उतर गयी । बूँदें पड़ने लगी थीं, परन्तु वह वहीं टहलने लगी । सहसा जोर से बिजली तड़पी । सुजान की आँखें चकाचौंध में मुँद गयीं । वह आनन्द के कक्ष की ओर भागी । वह देहलीज पार कर रही थी कि पुनः बिजली तड़पी । सुजान घबराकर धम्म से आनन्द की शैय्या पर जा गिरी । आनन्द जग पड़ा । लेकिन सुजान पर 'भाग्य' का प्रभाव चल रहा था जननी बनने का संकल्प अपना अभिप्राय पूरा कर रहा था और सम्भवतः जो होना था वह होकर ही रहा ।

प्रातः नया सूर्योदय हुआ । बादल छँट गए थे और रश्मियाँ [illegible] के आँगन का अभिनन्दन करने लगी थीं । आज सुजान मुँह अन्धेरे उठी थी । नहा-धोकर, पूजागृह से गोरोचन, प्रसाद तथा पुष्प लेकर वह आँगन में आई तो सामने से आनन्द चला आ रहा था । जैसे ही परस्पर दृष्टि मिली कि आँखें लज्जावनत हो गईं । सुजान सहजभाव से बोली—'मेरे साथ आओ' और तेजी से आनन्द के कक्ष की ओर बढ़ी । आनन्द भी पीछे-पीछे चल पड़ा । कक्ष में पहुँचते ही सुजान ने आनन्द को एक चौकी पर बिठाकर गोरोचन लगाया, माला पहनायी और उससे बोली—'इस सिन्दूर से सात चुटकी मेरी माँग में भर दो ।' आनन्द चौंक पड़ा—'सिन्दूर !'

'हाँ आनन्द ! सिन्दूर ही भावी सन्तान की पहचान है और नारी की माँग का अर्थ ही सिन्दूर है । अब मैं जो हूँ उसके लिए यह अनिवार्य भी है । सिन्दूरदान का सबसे पवित्र और समीचीन समय यही है । सुजान ने थाल आगे बढ़ाकर अपना सिर झुका दिया । आनन्द ने चुटकी से

सिन्दूर लेकर जैसे ही सुजान की माँग की ओर बढ़ाया कि कक्ष के बाहर से ही ठाकुर बहादुर सिंह ने निवेदन किया—'सरकार, शाहंशाह आलम शाह रंगीलेशाह मुगले आजम पधारे हैं। आपको शीघ्र तलब किया है।' बहादुर के शब्दों ने जैसे *उल्कापात कर दिया। रंग में भंग हो गया।* आनन्द अपना उत्तरीय कन्धे पर डालकर तेजी से कक्ष के बाहर आ गया। सुजान को यह स्थिति खल गयी। उसे आनन्द का तेजी से निकल जाना भी रास न आया। परन्तु वह उदास नहीं हुई। दबे पाँव अतिथि कक्ष की ओर चली। कक्ष के बाहर कपाट की आड़ में गोमती भी खड़ी दिखी। सुजान को उन्होंने अपने पास ही रोक लिया। दोनों कक्ष का उग्र वातावरण निहारने लगी।

कक्ष में शाह आसन पर विराजमान था। ग्वालियर नरेश महामन्त्री पार्श्व में बैठे थे और सेनाधीश गुलाम हुसैन के साथ ही लाहौर के सूबेदार उस्मान अली सामने खड़े थे। सुजान गौर से देख रही थी। 'कहाँ है सुजान? मेरे सामने इसी वक्त हाजिर करो।' शाह ने तड़प भरी *वाणी में आनन्द को जैसे डाँट बतायी। अपने भवन का अतिथि कक्ष—* इसी कक्ष में रंगीले शाह के अब्बा हुजूर आनन्द के पिता के साथ चौसर खेले थे। आनन्द ने अपनी आँखों दोनों परिवारों का स्नेह भाव देखा था। अतः आनन्द ने अपने को स्थिर किया, विचार किया कि यह भवन अपना है और शाह इस भवन के अतिथि कक्ष में बैठा है। आनन्द ने एक बार क्रमशः सबको देखा। वह कुछ बोले कि शाह पुनः तड़पे—'फौरन से पेश्तर माबदौलत के हुक्म की तामील होनी चाहिए वर्ना…'

'वर्ना की परवाह आनन्द ने कभी नहीं की। अपना भवन है इसीलिए चुप रह गया। आप शाह लाल किले में हैं यहाँ तो केवल मेरे मेहमान हैं।' आनन्द पुनः बोला, 'शाहंशाह! सुजान आपकी राजनर्तकी नहीं रही, वह मेरी धर्मपत्नी है। अब आप हुक्म दीजिए।

'बेशर्मी की हद हो गयी। सुन रहे हो वजीरे आजम! एक [illegible] – यफ हमारे मीरमुंशी की औरत बने, यह माबदौलत कभी

सांवरे की अभ्यर्थना की– 'सांवरे ! तुम तो जानते ही हो कि मुझ जैसी अभागिन दूसरी शायद ही हो। जाति और समाज विहीन इस अनाथिनी को तुमने इतना ऊँचा स्थान दे दिया कि जैसे रंकिनी से साम्राज्ञी बना दिया। अब इतनी दया और करो कि मेरे आनन्द का बाल भी बांका न होने पाए।' सुजान की आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। इन प्रेमाश्रुओं में बड़ी निर्मलता थी। सहसा मन्दिर के इर्द-गिर्द बड़ी हलचल मची। सुजान ने झरोखे से देखा—दश बारह घुड़सवार बेतहाशा मन्दिर के प्रांगण में घुसे और एक-एक से पूछ-ताछ करने लगे। उनके सामने निर्मला का पति नन्दलाल पड़ गया। सुजान के प्राण कण्ठ में समा गए। निर्मला उसे सहारा न देती तो शायद वह धड़ाम से फर्श पर गिर पड़ती।

'कहां से आ रहे हो ? यह बुढ़िया कौन है ? किसकी बग्घी खड़ी है ? कहां जाना है ? प्रश्नों की झड़ी लग गई। बग्घी अवश्य खड़ी थी, परन्तु कोचवान घोड़ों को लेकर थोड़ी दूर पर एक बावली में पानी पिलाने-धोने चला गया था। नन्दलाल भी घुटा हुआ, अनुभवी व्यक्ति था। कई बार राजपुरुषों, सिपाहियों के चंगुल में पड़ चुका था। वह घबड़ाया नहीं, संयतवाणी में बोला—'सरकार ! यह मेरी विधवा, रुग्णा मां है, इसकी इच्छा थी कि मरने के पहले एक बार वृन्दावन का दर्शन कर लें, इसीलिए लेकर श्याम-सांवरे की लीलाभूमि में जा रहा हूं। हुजूर आज तीन दिन से यहीं टिका हूं। यह बग्घी टूट गई है, बनवाने की कोई युक्ति नहीं सूझ रही है। बड़ी ही परेशानी में पड़ा हूं कि मां की यह इच्छा कैसे पूरी करूं ? वह अभी कुछ और बोलने ही जा रहा था कि एक सैनिक तड़प उठा—'सच-सच बता, इधर से कोई बग्घी सुजान और मीरमुंशी घन-आनन्द की मां को लेकर अभी-अभी निकली है ?'

'हां सरकार, थोड़ी देर हुई, मैं जलपान कर रहा था तो एक बग्घी तीर की तरह आई और इस सीधी सड़क के सामने वाले मोड़ से मुड़ गयी तथा आंखों से ओझल हो गयी।'

'क्या ? इस मथुरा जाने वाले राजमार्ग पर नहीं गई ?'

'नहीं सरकार, उसे मुड़ते हुए मैंने देखा था । अब तक तो वह लगभग चार कोस पार कर गई होगी ।'

'यह ठीक कहता है । हम मथुरा के राजमार्ग पर न जाकर सीकरी का राजमार्ग पकड़ लें । चलो ।' देखते ही देखते सभी अश्वार ही मथुरा का मार्ग छोड़ सीकरी के मार्ग की ओर मुड़ गये । बड़ी भारी विपत्ति टली । सुजान की जान में जान आयी । नन्दलाल की बुद्धि ने सबकी जान बचा ली । सुजान को नन्दू प्रिय लगा । कभी-कभी खोटे सिक्के भी काम आ जाते हैं । कोचवान के आते ही बग्घी तैयार हुई और मथुरा के राजमार्ग पर तीव्र गति से दौड़ गयी । सन्ध्या होते-होते वे सबके सब काफी दूर निकल गए ।

कोचवान सतर्क हो गया था । उसने एक कुएं पर सबको कुछ खा-पी लेने का सुझाव देकर घोड़े की सेवा की और पुनः बग्घी जोत दी गई । गोमती बहुत थकी थी, निद्रा भग्न हो गई । कभी-कभी हिचकोले लगने पर जाग जाती थी । परन्तु सुजान की आँखों में नींद कहाँ, वह तो विचारों में खोयी थी । कल की रात का उसे ध्यान आया । वह उसके जीवन की ऐतिहासिक रात्रि थी । परम सुखद । वह समझ गयी—प्रत्येक सुख के पीछे दुःख की काली छाया रहती है । गत रात उसने जीवन का वह सुख और शान्ति प्राप्त की थी जो इस जन्म में उसे दुर्लभ थी और आज यह रात्रि ! मार्ग में कट रही थी । बेचारी सुजान की आँखें सूज आई थीं, आँसुओं का वेग रोके नहीं रुक रहा था और उधर गगन में चाँद हँस रहा था ।

कोचवान की तत्परता तथा कर्तव्यपरायणता बेजोड़ थी । वह नन्दू के साथ गपाष्टक करता सारी रात घोड़े का उत्साह बढ़ाता रहा । घोड़ा भी जैसे आनन्द का सखा होने के नाते सब कुछ समझ रहा था । उसके चरण शैथिल्य से आगे बढ़ने के लिए विद्रोह कर रहे थे परन्तु कहीं अड़ा नहीं । कोचवान के जीवन की भी यह ऐतिहासिक यात्रा थी । नियति ने

साथ दिया और प्रभात के पूर्व बग्घी वृन्दावन जा विराजी। बड़ा भारी भय, आतंक, खतरा झेलकर पार तो सभी हो गए, परन्तु ऐसी थकान आ गई थी कि मञ्जिल पर पहुँच कर भी किसी में बग्घी से उतरने की हिम्मत शेष नहीं थी। नन्दलाल ने क्रम से सबको नीचे उतारा; सामान यथास्थान रखा और हवेली में प्रवेश किया। चौकीदार ने सबका अभिवादन किया और नपे-तुले थके पाँव भूमि पर धरते सभी भवन में प्रविष्ट हुए। बाबू देवकीनन्दन ने अपने अन्तिम प्रवास हेतु यह रम्य हवेली बनवायी थी और आज तो यह शरण-स्थली सिद्ध हो गई।

लगभग चार मास बीत गए। आनन्द अभी तक न लौटा, यही चिन्ता सुजान को व्याकुल बनाये हुए थी। माँ आते ही बीमार पड़ीं, उपचार चला, भोजनादि पर अंकुश लगा, तो वह प्रायः कृश हो चलीं। उन्हें अब सहारा देकर उठाना-बैठाना पड़ता था। वे भी अब जीवन से थक गयी थीं। आनन्द का पास न होना, उन्हें विशेष खलने लगा। वे उठते-बैठते ऊँची साँस लेकर पूछा करतीं—'हाय, मेरा आनन्द कब आएगा ?' उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया था। सुजान के किसी आग्रह पर वे उसे झिड़क बैठती थीं और कभी घड़ियों तक उसके सिर पर हाथ फेरतीं और क्षमा-याचना करती हुई रो-रो पड़ती। सुजान न रो पाती और न स्वयं को संभाल पाती। उसे इस समय विचित्र अनुभव हो रहे थे। माँ उसे हठ करके खाने-पीने पर बाध्य करती। वे कभी-कभी विनोद भी कर बैठतीं—'बहूरानी ! तुम क्या जानो। मेरा आनन्द जब उदर में था मैं नाना प्रकार के मिष्ठान्न खाती थी। तुझे तो अब दूनी खुराक चाहिए, अपनी और बच्चे की सुन-सुन कर सुजान फूली नहीं समाती लेकिन ऊपर से शरमा जाती। निर्मला भी सरस व्यंग्य करती। सुजान के सामने भविष्य का चित्र अत्यन्त धुंधला-सा दिख रहा था। माँ खाट पकड़े हैं, तीन बार समरजीत और नन्दू दिल्ली गए और आए, पर केवल इतना पता लगा पाए कि आनन्द का निवास इस समय लाल किले में ही है। जिस शाह ने कभी आनन्द को लगभग दुत्कार ही दिया था, अब उसी पर सारी आशा लगाए बैठा था। सुजान की तो उसने चर्चा ही छोड़ दी थी। उसे तो अब केवल आलमहीरा तथा शाही खजाने की चिन्ता लगी थी जिसकी रक्षा पर शेषनाग की भाँति आनन्द को बैठा

रखा था। नादिरशाह इस समय दिल्ली को घेरे बैठा था। छककर मदिरापान और रंगीले शाह द्वारा अर्पिता लीला का उभरता यौवन उसे तसल्ली दिए हुए था। होश में आने पर आलमहीरा और खजाने की माँग दुहराता था। उसके सैनिक नगर में घुसकर नागरिकों, श्रेष्ठियों को लूटते थे और उनकी ललनाओं के साथ बलात्कार करते थे साथ ही प्रतिरोध पर उन्हें तलवार के घाट उतार देते थे। सारा नगर जैसे किसी दुर्दान्त राक्षस के पञ्जे में फँसा कराह रहा था। सुन-सुनकर सुजान बड़ी चिन्ता में पड़ी। उसका मनोबल अब धीरे-धीरे गिरने लगा और गर्भ-भार से भी वह प्रायः खिन्नवदना रहा करती थी। उसने खाने-पीने में उदासीनता दिखाई और शनैः शनैः उसका स्वास्थ्य भी क्षीण होने लगा। कनकयष्टि सी काया अब पिञ्जर सी दिखने लगी। आँखें जैसे गड्ढे में धुस गईं। रूखे बाल, शिथिल देह और उतरा हुआ मुख-मण्डल, सब मिलाकर ऐसा प्रतीत होता था मानो कमल दल पर भीषण तुषार पड़ गया हो। स्वामिनी की इस दशा को देखकर निर्मला एकान्त में बैठकर रोया करती। समर और नन्दू पुनः दिल्ली भागे। अब यहाँ केवल भरोसे चोकीदार का ही सहारा रह गया था। अचानक एक दिन माँ की तबियत खराब हुई। वैद्यराज आए और उन्होंने नकारात्मक मुद्रा दर्शायी। सुजान जैसे आसमान से गिर पड़ी।

रात गहरा रही थी। आकाश में वर्षा के मेघ घिर रहे थे। हवा भी तेज थी। माँ के पास बैठी सुजान आंसू बहा रही थी। निर्मला माँ के चरणों को सहला रही थी। आज तीन दिन से गोमती के मुंह में अन्न का दाना भी नहीं गया था। केवल जल पीकर थीं और आज तो दोपहर से उन्होंने आँख तक नहीं खोली। औषधि खिलाई गई परन्तु वह गले के नीचे न उतर सकी। सुजान की चिन्ता बढ़ गयी। भरोसे को जगाया गया। बड़ा स्वामिभक्त था। आधीरात में वैद्यराज के पास गया और लौट कर जो बताया उसे सुनकर सुजान और निर्मला दोनों लग-

भग विदित हो गईं। वैद्य जी के कथनानुसार गोमती के जीवन की यह अन्तिम रात थी।

सहसा माँ ने आँखें खोलकर निहारा। सुजान फफक-फफक कर रो रही थी। गोमती में बड़ा साहस था। जीवन में उन्होंने बड़े उतार-चढ़ाव देखे थे। सुजान की बाहु और कन्धे का सहारा लेकर वे बड़ी हिम्मत करके तकिया के सहारे बैठ गईं। 'बहूरानी कुछ खिलाओगी नहीं?' इतना कहकर उन्होंने सुजान के अश्रुसिक्त कपोलों को सहलाया। सुजान रोती रही। 'मत रो बहू, भला यह मैं कैसे सहन कर सकती हूँ कि मेरी गृह-लक्ष्मी रुदन करे। अपनी सहज मुस्कान मुझे एक बार फिर से दिखा दो।' सुजान ने बड़ी मुश्किल से कृत्रिम ढंग से मुस्कराने की चेष्टा की। निर्मला को संकेत से मधु लाने को कहा। मधु चाटकर गोमती ने मन भर जल ग्रहण किया। उनकी अब तक की क्षीण शक्ति जैसे पुनः वापस हो आई। बोलीं—'देख, बहू! घबड़ाने की कोई बात नहीं। मैं मरी थोड़े जा रही हूँ। अभी तो मेरा आनन्द आयेगा और आनन्द का नन्हा राजकुमार। हाँ बेटी! उसका नाम क्या रखोगी?' माँ इस समय पूर्ण स्वस्थ सी दिखी।

'माँ जी! आप आराम करें। वे आने वाले ही हैं। नन्दू इस बार उनसे मिलकर आपका सन्देश देगा और निःसन्देह आपकी अस्वस्थता का संवाद पाकर वे दौड़ पड़ेंगे। आप ठीक हो जाएँगी, माँ जी।' सुजान इतना बोलते-बोलते जैसे हाँफ उठी।

गोमती कुछ सोचने लगीं। उनका ध्यान अपने अतीत की ओर चला गया। वे क्रमशः अपना विवाह, फिर पति-प्रेम तदुपरान्त नन्हा सा आनन्द तथा उन दिनों को मानो चित्र-पट की भाँति देख रही थीं। थोड़ी देर बाद जब उनका ध्यान टूटा तो बोलीं—'बहू उसका नाम 'भरत' रखना। शकुन्तलानन्दन भरत। भूलना नहीं, और आनन्द।' तक उनकी वाणी चल पायी। सुजान ने देखा माँ तकिया में मुँह डाले लुढ़क गई हैं। निर्मला चीख पड़ी। भरोसे दौड़ा-दौड़ा आया। सुजान

माँ के सिर पर हाथ फेरने लगी। माँ ने आँखें खोल दीं—'बहू! तू अभी तक बैठी है? मैं तो सपना देख रही थी। तू घबड़ा नहीं। मेरा आनन्द आएगा। तेरी गोद में नन्हा भरत होगा। बेटी! मेरी किसी बात का बुरा····न·····' कहते-कहते गोमती का वाग रुद्ध हो गया। दो-तीन हिचकी····वस····शान्त। निर्मला चिल्ला पड़ी। भरोसे फफक पड़ा। सुजान स्तब्ध। बाहर बूँदें पड़ने लगी थीं। रह-रहकर वादल गड़गड़ा उठते थे। नितान्त भयावनी कालरात्रि।

गोद में माँ का सिर लिए हुए सुजान ने गीता की पंक्तियाँ दुहराईं—

अशोच्यानन्वशोच्यस्त्वम्········

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि········

उसके नयनों से अश्रु की बूँदें ढुलकने लगीं। उसे माँ की ममता ने वशीभूत कर रखा था। वड़ा भारी पद इस माँ ने उसे दे डाला था। जिसे समाज के विलासियों ने केवल भोग की सामग्री समझा, शाह ने इच्छा की दासी वनाना चाहा, और कला प्रेमी कला पर ही रीझे रहे, उसके लिए कुछ न कर सके। उसी अनाथिनी को इस देवी ने ऐसे अपनाया जैसे वह युग-युग की गृह-लक्ष्मी थी। सुजान का सिर श्रद्धावनत हो गया। उसके नयनों से गिरे अश्रु माँ की धवल केशराशि में खो गए।

माँ को शैया से नीचे आसन पर लिटाकर सुजान चरणों के पास वैठ गई। निर्मला भी स्वामिनी के पास शेष रात्रि वैठी रही। सवेरा हुआ। वर्षा रुकी। सुजान नहीं उठी। पास-पड़ोस के नर-नारी एकत्रित हुए। कुहराम मच गया। एक वृद्धा ने सुजान के पास जाकर उठाया। वह उठी किन्तु अपने को संभाल न सकी। निर्मला ने सहारा दिया। वृद्धा वोली—'विटिया! जो होना था सो तो हो गया। अव यह वताओ इनका दाह-संस्कार होगा या इनके पति की समाधि के पास ही इन्हें भी समाधि देनी है। यदि आनन्द की प्रतीक्षा करोगी तो शव की दुर्दशा हो जाएगी।'

'जैसा आप सव उचित समझें। वैसे माता जी ने मरने के पूर्व अपनी

कोई भी इच्छा नही व्यक्त की थी।' सुजान मुँह फेरकर फफक पड़ी। वृद्धा ने सुजान को सान्त्वना देते हुए कहा—'बहू, तुम इस प्रकार व्याकुल न बनो। गर्भ के बच्चे पर इसका बुरा असर पड़ता है।'

इस प्रकार मध्यान्ह तक सहानुभूति प्रकट करने वालों का तांता लगा रहा। मध्यान्ह के पश्चात् समाधि का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। सायं के पूर्व गोमती अपने प्रिय पति के पार्श्व में ही समाधिस्थ हो गईं। सुजान के पास द्रव्य का अभाव नहीं था। माँ ने भी कुछ थोड़ा धन नहीं छोड़ा था। इसलिए देवकीनन्दन की समाधि की ही भाँति गोमती की भी समाधि संगमरमर की ही बनाई गई। सुजान मे इस समय जैसे दूना उत्साह आ गया था। बड़े तड़के उठती, स्नानोपरान्त दोनो समाधियों पर दीप-धूप-नैवेद्य चढ़ाती। गीता का पाठ करती।

गोमती का वृषोत्सर्ग संस्कार आनन्द की अनुपस्थिति में नही हो सका फिर भी एक सुयोग्य आचार्य को बुलाकर सुजान ने तेरहवें दिवस के ब्राह्मण भोज आदि की व्यवस्था कर डाली। आज गोमती को मरे बारह दिन हो गए थे, परन्तु सुजान ने किसी को यह प्रतीत ही नही होने दिया कि उनका कोई नही है। भरोसे प्रातः से ही चार छः आदमी साथ लेकर शाक आदि की व्यवस्था मे लगा रहा। दोपहर के पश्चात् क्रम से मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, बरसाना के कुलीन ब्राह्मण पधारने लगे। सुजान गर्भ-भार से दबी थी फिर भी उसमें अदम्य उत्साह समाया था। उसने सभी ब्राह्मणों के चरण अपने हाथ से धोए। बड़ी श्रद्धा से भोज-स्थल पर आसन लगवाकर बिठाया। जब सभी बैठ गए तो वह किनारे खड़ी होकर परसने वाले व्यञ्जनों की व्यवस्था बड़ी तत्परता से देखने लगी। अभी सारे व्यञ्जन परोसे भी नही गए थे कि अचानक विप्रवृन्द मे हलचल प्रारम्भ हुई। पहले परस्पर कानाफूसी हुई फिर बातें कुछ स्पष्ट कुछ अस्पष्ट। सुजान ने इशा' से निर्मला को पास बुलाया—'निर्मल! क्या बातें हो रही हैं? क्या हमसे कोई त्रुटि रह गयी?' निर्मला कुछ बोले कि एक अधेड़ ब्राह्मण पंक्ति मे उठ खड़ा हुआ और तीखे स्वर में

बोला—'विप्रबन्धुओं ! हमें यहाँ निमंत्रण देकर हमारा घोर अपमान किया गया। हम बा० देवकीनन्दन का सम्मान करते थे। उनकी धर्म-पत्नी की क्रिया एक वेश्या द्वारा सम्पन्न की जा रही है। यहाँ का अन्न ग्रहण करना हमारे लिए सीधे नरक-प्रवेश के समान है।' स्वर उभरे—'अरे ! यह तो रंगीले शाह की रखैल सुजान है। भगवान् कृष्ण ने हमारा धर्म बचा लिया।' दूसरा स्वर गूँजा—'यह रण्डी है। इसके यहाँ भोजन करके हम अपनी सात पीढ़ियों को नरकगामी बना देंगे।'

इसी प्रकार नाना टिप्पणियाँ मुखर होती गईं और सुजान के देखते-देखते सारा ब्राह्मण-समुदाय भोज-स्थल से उठ गया। सुजान यह देख न सकी। वह कुछ बोल भी न सकी। अन्दर जाकर श्याम-साँवरे के चरणों पर धड़ाम से गिर पड़ी। बाहर यही स्वर तीव्र से तीव्रतर हो रहा था—'सुजान वेश्या है। आनन्द जीवन भर कुँवारा रहा और अन्त में इस रण्डी के चंगुल में फँसा।' सुजान बेहोश थी और निर्मला पानी के छींटे देकर होश में लाने का प्रयत्न कर रही थी। सुजान चेती किन्तु देर से। सारा खेल खत्म हो चुका था। सैकड़ों जन का भोजन धरा का धरा रह गया। सुजान के अन्तर में टीस हुई। पहले व्रीड़ा, फिर वितृष्णा और उसके बाद जुगुप्सा के भाव उसके चित्त में आये। माँ ने उसे स्वीकारा परन्तु उनके न रहने पर वह स्वीकृति स्वतः निरस्त हो गई। आनन्द के वंश को वह समाज समझे बैठी थी परन्तु आज प्रमाण मिल गया कि समाज किसी भी स्थिति-परिस्थिति में परम्पराओं से विचलन कदापि नहीं सहन कर सकता। तो फिर, इसका सीधा अर्थ यह निकला कि स्नेह-भक्ति-निष्ठा को कहीं मुँह छिपाने को भी स्थान नहीं। वाह रे समाज ! स्वयं अपराध करे और दण्ड निरपराधी को। आखिर वेश्या भी तो उसे समाज ने ही बनाया।

सुजान को भगवान् पर पूर्ण विश्वास था, इसीलिए उसने किसी को दोषी नहीं ठहराया। उसकी दृष्टि में समाज ईश्वर का ही प्रतिनिधित्व कर रहा है। आखिर, समाज भी शिव की भाँति कब तक विषपान

करता रहे। किसी भी वस्तु या विषय की कोई न कोई सीमा होती है। वह वेश्या बनी, चाहे जीवित रहने के लिए उसने ऐसा किया, पर यह तो ध्रुव सत्य है कि उसके लिए ही कितनों ने अपनी कुलवधुओं को सिसकने पर बाध्य किया होगा। कितने घर बर्बाद करके उसने अपने जीवन प्रभात को बनाये रखने की कोशिश की। रंगीले शाह के दीवाने खास में उसकी अदा पर हीरे-मोती न्योछावर हुए, उस समय का वह सुख प्राप्त किया तो दुःख के लिए भी तो तैयार रहना ही चाहिए था। उसे आनन्द मिला, ठीक था परन्तु वहाँ भी एक सीमा थी। क्या उसने उस सीमा का उल्लंघन नहीं किया? किया, गर्भवती बनी। चली थी जननी बनने। यह सोचते ही उसमें अचानक शक्ति जागी। भरोसे को बुलाया—'देख भरोसे! सारा व्यञ्जन गरीब-दुखियों को बाँट दो।' 'जैसी मालकिन की इच्छा।' कहकर भरोसे दौड़ गया। थोड़ी ही देर में सैकड़ों नंगे-भूखे जैसे भगवान् दीनबन्धु का रूप धारण किए जय-जयकार करते हवेली के द्वार पर एकत्रित हो गए। सुजान गद्‌गद हो गई। उसने सब को आदर से बैठाया, अपने हाथ से दौड़-दौड़ कर व्यञ्जन परोसे। उन्हें भर पेट खिलाया और चलते समय एक-एक स्वर्ण मुद्रा दी। सबने 'बहू-की जय हो' का आशीर्वाद दिया और थोड़ी देर में पुनः सब शान्त! सुजान ने निर्मला को भी सामने बैठाकर बड़े प्रेम से खिलाया और स्वयं मात्र जल ग्रहण करके अपने कक्ष में जाकर शैया पर मुँह ढाँपे न जाने कब तक बिलखती रही।

वह रात भर करवटें बदलती रही। किसी निश्चय पर आना चाहती थी परन्तु सब तरफ से लाचार हो रही थी। गर्भ-शिशु उथल-पुथल मचा रहा था। उसने आज कुछ भी तो नहीं ग्रहण किया। ब्राह्म मुहूर्त में अचानक उसने एक निर्णय ले ही लिया। वह बड़े वेग से उठी। श्याम-साँवरे के चरणों का स्पर्श किया। आँगन से बरामदे में आ रही थी कि फर्श पर लेटी निर्मला को देखा। सुख-दु.ख की सगिनी! उसने निर्मल के सिर पर हाथ फेरा और झटके से बाहर आ गई। उद्यान में माँ के

समाधि के पास पहुँची—'माँ ! तूने सुजान को वेश्या समझते हुए भी गले लगाया था। तू नहीं रही तो सुजान कैसे रह सकती है ? मत्था टेककर उसने श्रद्धा से वन्दन किया और लम्बे डग भरती वह हवेली के मुखद्वार से वाहर हो गई। प्रभात हो चला था। सुजान में न जाने कहाँ का साहस आ गया था कि वह जैसे दौड़ रही थी। उसने कहीं विश्राम नहीं किया। उसे यह भी पता नहीं कि कहाँ जा रही थी ?

अपने जीवन में सुजान को इस दशा में भागने का यह दूसरा अवसर था। एक वार वह अपनी इज्जत बचाने के लिए भागी थी। उस वार उसने निश्चय कर लिया था कि प्राण दे देगी और सतीत्व नहीं छोड़ेगी। किन्तु आज परिस्थिति कुछ और थी। आज तो शील रक्षा का भी संकट नहीं है। फिर वह क्यों भाग रही है ? ऐसा विचार मन में आते ही कदम रुक गये। वह मार्ग के किनारे एक वृक्ष की जड़ के सहारे बैठ गई। सामने कालिन्दी का कल-कल निनाद ! सुजान जैसे हताशा में डूब गई। वह क्यों भागी ? दो-तीन बार ये प्रश्न उसके अन्तर से उदय हुए। उसकी निर्मला उसे खोज रही होगी। कुछ समय पश्चात् आनन्द भी आएगा, वह अपने मन में क्या सोचेगा ? आनन्द का ध्यान आते ही सुजान जैसे हार गई। उसकी इच्छा वापस लौटने की हुई। वह उठकर दो-चार कदम ही बढ़ पायी थी कि पीछे से किसी नारी ने पुकारा। सुजान ने मुड़कर देखा—विश्वमोहिनी ! गेरुए वसन में तपस्विनी-सी दिख रही थी। मस्तक पर श्री वैष्णव तिलक, कण्ठ में तुलसी की माला, हाथ में कमण्डल, अचला डाले विश्वमोहिनी तेजस्विनी दिख रही थी। सुजान ने विश्वमोहिनी को आगरे में यौवन की ढलान पर देखा था और उस समय वह वस्त्राभूषणों से लदी रहती थी, फिर भी उस कान्ति में और इसमें वड़ा अन्तर था। सुजान कुछ वोले कि विश्वमोहिनी ही कह उठीं—'वेटी सुजान ! देखो, तुम मुझे सामने देखकर भी नहीं पहचान रही हो और मैंने तुम्हें पीछे से चीह्न लिया। वेटी ! किसी समय मैं घोर पतित, घृणा की पात्रा थी। उस समय तुम्हारा व्यवहार मेरे प्रति ठीक

था। परन्तु, बेटी ! क्या तू अभी भी मुझसे नाराज है।' कहते हुए विश्वमोहिनी ने सुजान को कण्ठ से लगा लिया। ऐसा सौहार्द पाकर सुजान फफक कर रो पड़ी। 'बेटी सुजान !' विश्वमोहिनी ने धीरे से सुजान के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'यह रोने का समय नहीं। मुझे देखो, मेरी इस काया पर क्या-क्या नहीं बीती, परन्तु मुझ जैसी दूषिता को भी भगवान् के चरण-कमल की छाया प्राप्त हो गई, तू तो अभी जैसे धरती पर चरण ही रख रही है। चल मेरे साथ।' सुजान कुछ न बोल सकी। विश्वमोहिनी के पीछे-पीछे चलने लगी। विश्वमोहिनी भी सुजान को पाकर फूली नहीं समा रही थी। सारे रास्ते बोलती रही—'बेटी ! अब मेरा नाम पुरुषोत्तम दासी रखा गया है। स्वामी चिन्मयानन्द की मेरे ऊपर अपार कृपा रहती है। स्वामीजी वैष्णव सम्प्रदाय के सर्वोच्च प्रतिनिधि माने जाते हैं। उनकी वाणी में अमृत है। सुजान ने देखा विश्वमोहिनी सचमुच बदल गई है।

मार्ग में ही सुजान ने भी संक्षेप में अपनी दुःख भरी कहानी सुनाई। जैसे ही वह ब्राह्मण-भोज की गाथा कहने लगी, रो पड़ी। विश्वमोहिनी ने उसे सान्त्वना दी—'सुजान ! यह संसार दोमुँहा साँप है। यहाँ तनिक-सी चूक पर भी विष-पीना पड़ता है। जिन ब्राह्मणों ने अन्न को मात्र इसलिए ठुकराया कि उसका प्रबंध एक ऐसी नारी की ओर से किया गया था, जिसकी जीविका से समाज को चिढ़ है, वही रात में मथुरा की गलियों के चक्कर काटते हैं। बेटी ! ऐसे संकीर्ण विचार के ब्राह्मण यदि उस भोज में अन्न ग्रहण कर लेते तो तुम्हारी श्रद्धा का भी हनन हो जाता। इससे अच्छा तो था कि तू गरीब-दुःखियों को बुलाकर उन्हें प्रेम से भोज दे देती और उनके कण्ठ से जो आशीर्वचन निकलते उससे उस वंश की सात-पीढ़ियाँ स्वर्ग-सुख भोगतीं।'

'माँ ! मैंने वही किया।' सुजान का मनोबल बढ़ा। बोलते-बतलाते दोनों यमुना तट पर स्थित वल्लभाचार्य के पावन आश्रम में पहुँचीं। विश्वमोहिनी को भी एक छोटी-सी कुटिया में शरण मिली थी।

कुटी में पहुँचकर सुजान ने जैसे चैन की साँस ली। दिव्य वातावरण। चारों ओर भजन-कीर्तन, सत्संग-उपदेश का प्रभाव था। सुजान जैसे किसी पुनीत तीर्थ में शरण पा गयी थी। विश्वमोहिनी ने उसे एक धवल साड़ी लाकर दी। सुजान यमुना तट पर स्नानार्थ गई, दूर से ही यमुना मैया को वन्दन किया। स्नान करके सीढ़ियों पर चढ़ रही थी एक संगमरमर की पटिया पर पड़ा अपना पाँव हटा लिया। उस पर अंकित था—'यह घाट वा० देवकीनन्दन माथुर द्वारा अपने पिता श्री वा० कौशल किशोर की पुण्य-स्मृति में विनिर्मित।' सुजान के मन में श्रद्धा के भाव जगे। उसने उस पटिया पर मत्था टेका और लम्बे डग भरती आश्रम की ओर चल पड़ी। वहाँ प्रसाद मिला। आज तीसरे दिन मुँह में अन्न पड़ा। खा-पीकर फर्श पर लेटी ही थी कि घोर निद्रा में डूब गई। विश्वमोहिनी सत्संग में कथा सुनने गई थीं। दिन ढलते वापस हुईं और कुटिया के वाहर से ही पुकारा—'बेटी सुजान! उठकर देखो, कौन आए हैं?' सुजान रो रही थी। विश्वमोहिनी अन्दर गईं हाथ का स्पर्श होते ही सुजान चौंक कर उठ बैठी—'माँ, कल रात मैं विल्कुल ही नहीं सो पाई थी। नींद लग गयी।' जैसे ही वाहर दृष्टि गई, वह दंग हो गई। वाहर सदाशिव और केशवानन्द खड़े थे। सुजान के मन का अन्तर्द्वन्द्व वढ़ा। उसने वहीं से पुकारा—'वावा! आप दिल्ली से कव आए? काका! आपने उन्हें कहाँ छोड़ा? क्या-क्या-क्या वे अभी तक···· नहीं····आए?' कहते-कहते सुजान की आँखें छलक उठीं। कण्ठ भर आया। वाह रे नारी हृदय! विधाता यदि तुम्हें न रचता तो जगत् में ममता-दया का अस्तित्व ही न होता।

सदाशिव और केशव कुटिया में प्रविष्ट हुआ। देखा सुजान का स्वास्थ्य विल्कुल गिर गया है। वह पहचानी नहीं जा रही है। सदाशिव को वड़ी भयावनी लगी। वोला—'वेटी तुम्हारे चले जाने के वाद आनन्द पर क्या-क्या वीती? इसे कह पाना आसान नहीं। रंगीले शाह ने उन पर वड़े-वड़े आरोप लगाए। और रस्सी से वाँधकर हम लोगों के

सामने ही उन्हें साम क्रिये से लाया गया। सैनिकों ने हम लोगों को यातना देनी प्रारम्भ कर दी 'बताओ सुजान कहाँ है?' यही प्रश्न वे हम सबसे बराबर पूछते रहे। बेटी! आनन्द को बाँधते देख हेम का खून खौल उठा। उसने पहले तो शाह से याचना की, फिर थोड़ा तैश में आकर बोला ही था कि शाह के संकेत से एक सैनिक ने उसका सिर भुट्टे की तरह उड़ा दिया।' इतना सुनते ही सुजान विश्वमोहिनी की गोद मे संज्ञा शून्य-सी लुढ़क गई। विश्वमोहिनी ने पानी से मुँह पोंछा और सदाशिव को आगे कुछ बताने से रोक दिया। सुजान होश मे आई तो मानस मे हेम का चेहरा याद आया मृदंगाचार्य हेम। उसकी भी ऐहिक लीला समाप्त हो गयी। विधाता भी कैसा पाषाण-हृदय है? 'बाबा! हेम की ऐसी निर्मम हत्या आप कैसे सहन कर गए?' सुजान बड़े विस्मय मे बोली। 'बेटी! इसे सहन करना कैसे कह सकते हैं? यह मात्र हेम की हत्या नहीं अपितु मृदङ्ग संगीत की हत्या थी। हेम के बाद इस कला का उत्तराधिकारी पीढ़ियो तक नहीं दिखेगा। उसके साथ एक मोहक कला लुप्त हो गयी।'

सुजान को मृदंग पर पड़े अपने चरण की थापें अभी भी स्मरण हैं। हेम का बलिदान उसे खला। वह रो भी नही पा रही थी क्योंकि अब तक की विडम्बनाएँ झेलते-झेलते उसके आँसुओं का स्रोत जैसे सूख गया था। 'बाबा! उनकी भी कोई खबर कहीं से मिली?' 'बेटी! आनन्द सकुशल है और शाह के खजाने की रक्षा का भार उन्हीं पर सौंपा गया है। इसके आगे हमें कोई जानकारी नहीं।' केशव आगे कुछ बोल न सका। धीरे-धीरे उन्हें सुजान पर पड़ी विपत्तियों का संवाद भी मिला। केशव का मन खिन्न हो उठा। वे तीन-चार दिन वहाँ रुककर उज्जयिनी के लिए प्रस्थान कर गये। केवल सदाशिव रुका। उसने आड़े दिनों में सुजान का साथ दिया था, इसलिए वह छोड़कर नहीं जा सका। विश्व-मोहिनी को तो पूजा-पाठ-सत्संग से ही समय नहीं मिलता था, अस्तु सुजान सदाशिव काका से ही बातचीत मे समय गुजारती।

सुजान नित्य प्रातः उठकर यमुना-स्नान हेतु निकल पड़ती। साथ में सदाशिव रहता था। एक दिन सदाशिव सीढ़ियों से फिसलकर गिर पड़ा। लोगों ने दौड़कर उठाया, पर वह खड़ा नहीं हो सका। बड़ी भीड़ एकत्र हो गई। उसकी रीढ़ की हड्डी टूट गई थी। अब वह जीवन भर के लिए बेकाम हो गया। सुजान ने ऊपर देखा कि उसकी नज़र नन्दू पर पड़ी। वह निश्चल भाव से उसे ताकती रही। जैसे ही नन्दू ने सुजान को देखा, 'मालकिन' कहता हुआ चरणों पर गिर पड़ा। 'मालिक आ गए हैं मालकिन ! आपके वियोग में अन्न-जल त्याग केवल लिखते और गुनगुनाते रहते हैं। बहादुर सिंह, समरजीत आदि आपको चारों ओर ढूँढ़ रहे हैं। मालकिन आपकी दासी निर्मला.....'वह इतना ही कह पाया था कि सुजान चिल्ला उठी—'क्या हुआ निर्मला को, वह मेरी दासी नहीं छोटी बहन है।'

'निर्मला पागल हो गई मालकिन ! एक दिन तो गला दबाकर मुझे सोते में मार ही डालती, कुशल तो यह हुआ कि मालिक जाग रहे थे और मेरी घिघियाती आवाज़ सुनकर दौड़े। निर्मला उन्हें देखकर दूर हट गयी और बोली—'मालिक ! इससे पूछिए, यह मालकिन को क्यों नहीं ढूंढ़ लाता ? और मुझे ढूंढ़ने के लिए क्यों नहीं जाने देता ? मैं-मैं-इसे मार नहीं रही थी मालिक। मैं तो यही पूछ रही थी—मेरी मालकिन का पता बता दे। मालिक ! यह जानता है, पर मुझे नहीं बता रहा।' निर्मला का प्रमाद देखकर मालिक रात भर सोए नहीं, और मैं उसी समय से सभी जगह पागलों की तरह आपको खोज रहा हूँ। अब देर न करिए, मैं बग्घी लाता हूँ, कहकर नन्दू तीव्र गति से भागा और थोड़ी ही देर में कोचवान को साथ ही ऊपर से ही पुकारा। सुजान ने इशारे से नन्दू और कोचवान को बुलाया और सहारे से बैठे सदाशिव को दिखाया। सदाशिव को देखते ही नन्दू चिल्ला उठा—'काका तुम्हें क्या हो गया ?' सुजान ने सारी घटना सुनाकर सदाशिव को बग्घी में लिटाया और नन्दू से बोली—'नन्दू ! काका को शीघ्र ले जाओ और निर्मला से

कह दो मैं आश्रम के स्वामी जी से आज्ञा लेकर दोपहर के पूर्व आ रही हूँ। नन्दू कुछ बोलने के लिए मुँह खोल ही रहा था कि देखा, सुजान बग्घी में लेटे सदाशिव से कह रही थीं—'काका ! वे आ गए हैं। वहाँ तुम्हारा उपचार भी हो जाएगा। काका ! किसी से कहना मत, सुजान अब उस हवेली में नहीं·····' कहती हुई स्नानार्थियों की भीड़ में खो गई। 'लोकोत्तराणां पुरुषाणां को हि विज्ञातुमर्हति' यहाँ लोकोत्तर केवल पुरुष के लिए ही नहीं नारी के लिए भी गतार्थ है। आनन्द की झलक के लिए सुजान उसके अश्रु का भार लिए अभी तक जी रही है और अब जब आनन्द उसके लिए विक्षिप्त है तो उस सहज अपेक्षा भाव इस समय क्यों हवेली की ओर नहीं दौड़ा पा रहा है ? वह दौड़ तो रही है, आनन्द की ओर ही तो अब तक दौड़ी, उसे छोड़ अब वह जा ही कहाँ सकती है ?

बहुत कुछ सोचती-विचारती सुजान अपनी कुटिया की ओर चलीं। मार्ग में एक कृष्ण मन्दिर था, उसके पाँव उधर मुड़े। स्वभावतः वह सीधी भगवान् के चरणों में नत मस्तक हो जाती थी परन्तु आज तो जैसे वह बारादरी में आई उसे आनन्द का मधुर स्वर सुनाई पड़ा। वहीं रुक गयी। एक स्तम्भ की आड़ से दर्द का रहस्य सुनकर मार्मिक पीड़ा से छटपटाती रही। आनन्द पावस के मेघ से अनुनय कर रहा था—

'पर कारज देह को धारे फिरौ
पर्जन्य यथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ
सबहीं विधि सज्जनता सरसौ॥
'घन आनन्द' जीवन दायक हौ
कछू मेरियौ पीर हिये परसौ॥
कबहूँ वा विसासी सुजान के आँगन
मो अँसुवान को लै बरसौ॥

'विसासी' सुजान खम्भ से बैठ गई। खम्भे की आड़ में थी। फिर भी आनन्द को देख रही थी। आनन्द स्वस्थ नहीं था, चित्त वि-

सुगन्धित किया गया। बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी। सुजान सज-धज कर आँगन में आई तो सभी चौंक उठे। बहादुर सिंह कुछ न समझ सका। नन्दू से तो दृश्य देखा ही न गया। इतनी भीड़ में सभी सजल नयन। सुजान आनन्द के समीप आई। हाथ में सिन्दूर की डिब्बी थी। उसने आनन्द का कटा दाहिना हाथ उठाकर उँगली में सिन्दूर डुबोकर अपनी माँग में लगाया और चरणों पर मस्तक रख दिया।

उसके अनन्तर अविरल अश्रुधारा के साथ पुनः हवेली में वापस गई और कुछ देर पश्चात् लौटी तो बिल्कुल बदल गयी थी। माँग का सिंदूर पुछ गया था। धवल साड़ी। ठाकुर चीख पड़ा—'मालकिन !'

'ठाकुर ! भारतीय विधवा का यही शुभ्रवेश है। अब देर न करो।'

उद्यान में ही संगमरमर की समाधि बनी। सुजान ने भी अपने हाथों का सहारा दिया। कई दिनों तक गीता का पाठ हुआ। सभी ब्राह्मणों ने आनन्द की तेरही में भोजन किया। दीन-दुखियों को भी दान किया गया। जैसे एक लम्बी कहानी खत्म हो गई।

दूसरे दिन ठाकुर ने वे सारे कागज-पत्रादि लाकर स्वामिनी के समक्ष रखे जो आनन्द ने दिये थे। सुजान लेटी थी, उठ बैठी, ध्यान से देखने लगी। सुजान के वियोग में आनन्द का लिखा वृहत् काव्य। सारे पत्रादि उसने एकत्रित किये। तब तक उसकी दृष्टि कुछ दस्तावेजों पर पड़ी। वह चौंकी।

'मालकिन ! सरकार ने वृन्दावन, बरसाना और गोवर्धन की जागीर, दिल्ली की दो हवेलियाँ और मथुरा के चार भवनों को आप के ही नाम कर दिया है। इन सब पर सरकारी अमलों की मुहरें लगी हैं।' ठाकुर ने बड़ी शालीनता से सुजान को आश्वस्त किया।

'परन्तु, ये सब मैं क्या करूँगी ?'

'मालकिन ! सरकार ने मुझे बुलाकर एकान्त में कहा था कि आप कभी न कभी अवश्य आएँगी और आनन्द अपने होने वाले राजकुमार का नाम 'भरत' रख गए हैं।' ठाकुर बोला।

स्वामिनी को बैठाया। सबके सब जब हवेली में पहुँचे तो ठा० बहादुर समरजीत के साथ बरामदे में ही प्रतीक्षा कर रहे थे। नन्दू ने बग्घी से उतर कर सारा वृत्तान्त बताया। ठाकुर की रगों का खून खौल उठा। वह रोया। विलाप किया। सुजान ने उसे सान्त्वना दी—'ठाकुर! तुम राजपूत हो। हँस-हँसकर मृत्यु से खेलना ही तुम्हारा स्वभाव है। अब यदि तुम इस प्रकार धैर्य छोड़ दोगे तो हम सब·····' ठाकुर की आँखें क्रोध से जल रहीं थी। 'मालकिन! हम उन हत्यारों का अस्तित्व मिटा-कर ही दम लेंगे।'

'ठाकुर यह समय बड़ा भयंकर है। इससे टकराने से हमारा ही अस्तित्व मिट जाएगा। तुम्हारे मालिक ने अपनी स्वामिभक्ति का मूल्य चुकाया है। यह इनका बलिदान है। और सुनो, इनके इस बलिदान से भारत की अनन्त धनराशि लुटेरे नादिरशाह के चंगुल से मुक्त हो गई। इनका नाम भारत के इतिहास मे अमर हो गया।'

'हाँ बहूरानी! हमारा आनन्द अब इतिहास पुरुष बन गया है।' कहते-कहते ठाकुर की आँखें भर आयीं। मुँह फेर कर आँसू पोछे। 'तुम रो रहे हो ठाकुर! मुझे देखो, मेरा सर्वस्व लुट चुका है फिर भी मैं नही रो पा रही हूँ क्योंकि जीवन भर रोई तब भी वैसी ही रही। अब मेरा संकल्प है कि उनकी शेष अभिलाषाओं की पूर्ति करूँ।' सुजान जल्दी से हवेली मे गई।

इधर आनन्द का शव बग्घी से उतार कर हवेली के आँगन मे रखा गया। सुजान ने निर्मला को अपने कक्ष में बुलाया।

'निर्मल! आज तू मेरा शृंगार कर दे उन्हें अन्तिम बार दुल्हिन के रूप में दिखूँ, यह उनकी अभिलाषा थी।' सुजान जैसे पागल हो।

'मालकिन! यह आप क्या कह रही हैं?' निर्मला जैसे घबड़ा गई।

'ठीक ही कह रही हूँ निर्मल! आज वे समाधि लेंगे, उसके पूर्व मेरी छवि देखने को अन्तरात्मा विकल हो रही है।' निर्मल ने सारे रेशमी वस्त्र, आभूषण आदि पहनाये। इधर आनन्द का शव नहलाया गया, इत्र आदि से

पर पड़ी तीन मुट्ठी धूल उस सैनिक पर फेंक दी। सभी सैनिक आनन्द के इस व्यवहार से तिलमिला उठे और एक ने आगे बढ़कर आनन्द का दाहिना हाथ काट दिया। रक्त की धारा वह चली। सभी भयाक्रान्त हो वहाँ से भागे। भगदड़ देखकर सुजान आँगन में आई। आनन्द भूमि पर पड़ा रक्त में सना था और बाएँ हाथ को रक्त में डुबा-डुबा कर भूमि पर लिख रहा था—

'प्यारे सुजान सुनो……'

'चाहत चलन अब संदेशों लै सुजान को।'

सुजान ने दौड़ कर गोद में लिटा लिया। अपने आँचल से बाहु का रक्त-स्राव रोकने का प्रयत्न करने लगी। आनन्द मन्द स्वर में बुदबुदाया—'सुजान से भेंट न हुई, न हुई।' अब वह बिल्कुल चैतन्य था। सुजान ने आनन्द का सिर अपने वक्ष से लगाकर बोली—'प्रियतम ! ध्यान से देखो, तुम्हारी सुजान तुम्हारे पास है।' आनन्द की आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था। सुजान के स्वर सुनते ही विह्वल हो उठा। सुजान उसका सिर सहलाने लगी। आनन्द जैसे जीत गया हो—'सुजान ! घबड़ाओ नहीं। मैं मरूँगा नहीं क्योंकि तुम जो आ गई। मैं……मैं……' वह रुक गया। सुजान आज घबराई। बड़ी-बड़ी आपदायें झेलकर भी मानव-मन कहीं न कहीं पराजित हो ही जाता है। वह चीख पड़ी—'आनन्द ! आनन्द ! कुछ तो बोलो।' आनन्द सुजान के कान के पास कुछ बुदबुदाया लेकिन स्वर स्पष्ट और इतने मन्द थे कि सुजान समझ न पाई। इतने में आनन्द के जीवन-नाटक का पटाक्षेप हो गया। सुजान धाड़ मार कर गिर पड़ी। पुजारी, देवालय के सेवक आदि दौड़ पड़े।

तभी हाँफते-हाँफते नन्दू अपनी अर्द्ध-विक्षिप्ता पत्नी निर्मला को लिए आँगन में पहुँचा। बाहर जैसा सुना था, वही देखा। निर्मला ने ध्यान से स्वामिनी को देखा। उसकी विक्षिप्ति लुप्त हो चली थी। पहचानते ही सुजान से लिपट कर रोने लगी। नन्दू व्याकुल हो उठा। बाहर बग्घी खड़ी थी। सबने आनन्द का शव बग्घी में रखा। निर्मला ने सहारा देकर

खान-पान का ठिकाना नहीं। सुजान यह सोचकर कांप उठी कि यही समय था जब वह उसकी देख भाल करती। वाह री नियति ! तू खिझाती भी है और हँसाती भी। सुजान के सामने ही उसका अनन्त सुख बिखरा पड़ा है और वह प्रत्यक्ष देख रही है—आनन्द प्रेम विभोर हो गा रहा है—

'घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ.........

'कछू नेह निवाहनो जानत ना.........

'कबहूँ वा विसासी सुजान के आँगन.........

अन्तिम पद सुनते ही सुजान भीड़ को चीरती हुई आँगन में आ गई। सबने देखा। टिप्पणियाँ प्रकट हुईं—'देखा पुजारी जी, आप समझ रहे थे आनन्द बाबू श्याम-सांवरे को रिझा रहे थे और हम समझ रहे थे कि यह उसी रण्डी को ढूंढ़ रहा है जो कहीं कोठा तलाश रही होगी' सब हँस पड़े।

'अरे ! यह तो वही है जो हमें अपना अन्न धोखे से खिलाकर हमारा धर्म भ्रष्ट करना चाहती थी।'

'मक्कार है, बद्जात है' सारे विशेषण समाज की ओर से अकेले सुजान पर थोपे गए। घोर अन्याय। सुजान की आंखें क्रोध से चिनगारियाँ बरसाने लगीं। यह देवालय है। यहाँ सभी समान थे। सुजान ने एक दृष्टि आनन्द पर डाली। वह अभी भी आँगन में 'प्यारे सुजान सुनौ' की रट लगाए था। सुजान समझ गई। आनन्द इतना विक्षिप्त है कि वह पहचान भी न पाये शायद। 'हां ये उसी सुजान को ढूंढ़ रहे हैं जिसे तुम सब सामने देख रहे हो। अन्तर यही है कि ये अपनी सुजान को श्याम-सांवरे की छवि में सहज ही पा रहे हैं।' सुजान मुखरा हो चली। एक नर्त्तकी का सहज चाञ्चल्य उसमें वीरभाव में व्यक्त हुआ—'अपनी ही अन्तरात्मा से पूछो, तुम ने सुजान को क्यों पाला ? क्यों उसके कटाक्ष पर रीझे, क्यों उसकी नृत्य-मुद्रा पर आहें भरते रहे। सुजान को उस गर्हित दशा में ले जाने वाले तुम हो, और तुम्हारा समाज अकेली सुजान

ही इस अवस्था के लिए जिम्मेदार नहीं। तुम सब हो, सभी हो।' कहते-कहते सुजान आनन्द की ओर चली। मन्दिर मे उपस्थित नारी समुदाय हिचकियाँ भरने लगा। पुजारी के नयन भी सजल हो गए।

भीड़ मे नादिरशाह के गुप्तचर भी खड़े थे। वे आनन्द की खोज मे थे शाही खजाने का पता रंगीले शाह का मीरमुंशी आनन्द ही जानता था एक महीने से चारों ओर की खोज इस देवालय में पाई। खबर हुई और पलक मारते ही देवालय का प्रांगण खड्गधारी सैनिकों से घिर गया। मन्दिर में खलबली मची। एक बलिष्ठ सैनिक आनन्द के पास आया। हाथ के झटके से सुजान को किनारे करते हुए आनन्द को डाँट बताई—'सच-सच बोलो, शाही खजाना लाल किले में कहाँ है? आलमहीरा कहाँ है? चलो हमारे साथ।' सैनिक ने आनन्द का हाथ पकड़ा ही था कि झटके से उसने सैनिक को आँगन में पटक दिया और छाती पर चरण रखते हुए गरजा—'पहले तुम बताओ मेरी सुजान कहाँ है, फिर मैं तुम्हें शाही खजाने का पता बता दूँगा।' दूसरे कई सैनिको ने तलवारें निकाल लीं, किन्तु वह सैनिक लेटे-लेटे ही सबको रोकते हुए बोला, 'तुम पाँव हटा लो, मुझे उठने दो। मैं यहीं तुम्हारी सुजान को दिखा दूँगा।' आनन्द ने उसके वक्ष से चरण हटा लिया सुजान काँप उठी। हाय भगवान्! अब क्या होगा? पहले तो वह आनन्द के इस पराक्रम पर मन ही मन विस्मित हुई थी और अब यह सैनिक उसकी पहचान भी कराएगा। बड़ा भयंकर दृश्य होगा। वह नहीं देख सकेगी। धीरे-धीरे नारियों की भीड़ मे से खिसक कर मन्दिर के प्रकोष्ठ में आ खड़ी हुई। हृदय धक्-धक् कर रहा था।

सैनिक ने इधर-उधर नजर दृष्टि दौड़ाई। सुजान न दिखी। आनन्द हँस पड़ा—'अरे बावरे! जिसे मेरा अन्तर नहीं ढूँढ पा रहा है उसे तू म्लेच्छ क्या ढूँढेगा?' एक अधेड़ दाढी वाले सैनिक ने क्रोध मे कहा—'हमें किसी की सुजान से क्या मतलब हमें तो जर जर जर चाहिए।' आनन्द बड़ी जोर से हँसा—'रज रज रज' कहते [illegible]

सुगन्धित किया गया। बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी। सुजान सज-धज कर आँगन में आई तो सभी चौंक उठे। बहादुर सिंह कुछ न समझ सका। नन्दू से तो दृश्य देखा ही न गया। इतनी भीड़ में सभी सजल नयन। सुजान आनन्द के समीप आई। हाथ में सिन्दूर की डिब्बी थी। उसने आनन्द का कटा दाहिना हाथ उठाकर उँगली में सिन्दूर डुबोकर अपनी माँग में लगाया और चरणों पर मस्तक रख दिया।

उसके अनन्तर अविरल अश्रुधारा के साथ पुनः हवेली में वापस गई और कुछ देर पश्चात् लौटी तो बिल्कुल बदल गयी थी। माँग का सिंदूर पुछ गया था। धवल साड़ी। ठाकुर चीख पड़ा—'मालकिन !'

'ठाकुर ! भारतीय विधवा का यही शुभ्रवेश है। अब देर न करो।'

उद्यान में ही संगमरमर की समाधि बनी। सुजान ने भी अपने हाथों का सहारा दिया। कई दिनों तक गीता का पाठ हुआ। सभी ब्राह्मणों ने आनन्द की तेरही में भोजन किया। दीन-दुखियों को भी दान किया गया। जैसे एक लम्बी कहानी खत्म हो गई।

दूसरे दिन ठाकुर ने वे सारे कागज-पत्रादि लाकर स्वामिनी के समक्ष रखे जो आनन्द ने दिये थे। सुजान लेटी थी, उठ बैठी, ध्यान से देखने लगी। सुजान के वियोग में आनन्द का लिखा वृहत् काव्य। सारे पत्रादि उसने एकत्रित किये। तब तक उसकी दृष्टि कुछ दस्तावेजों पर पड़ी। वह चौंकी।

'मालकिन ! सरकार ने वृन्दावन, बरसाना और गोवर्धन की जागीर, दिल्ली की दो हवेलियाँ और मथुरा के चार भवनों को आप के ही नाम कर दिया है। इन सब पर सरकारी अमलों की मुहरें लगी हैं।' ठाकुर ने बड़ी शालीनता से सुजान को आश्वस्त किया।

'परन्तु, ये सब मैं क्या करूँगी ?'

'मालकिन ! सरकार ने मुझे बुलाकर एकान्त में कहा था कि आप कभी न कभी अवश्य आएँगी और आनन्द अपने होने वाले राजकुमार का नाम 'भरत' रख गए हैं।' ठाकुर बोला।

'आनन्द' कहकर सुजान जैसे ध्यानावस्थित हो गई। बड़ी देर तक सोचती रही। उसका प्रेम, उदारता, दृढ़ता सभी कुछ याद आता रहा। आज तो समाज ने भी स्वीकारा, पर इससे लाभ? जब सब उजड़ गया तो""। नहीं, अभी तो भविष्य है, उसके उदर में, आनन्द का भरत। जिसके लिए जीने को प्रतिबद्ध है। आशा में बड़ा आकर्षण होता है। सुजान को शेष जीवन जीना ही पड़ेगा।